

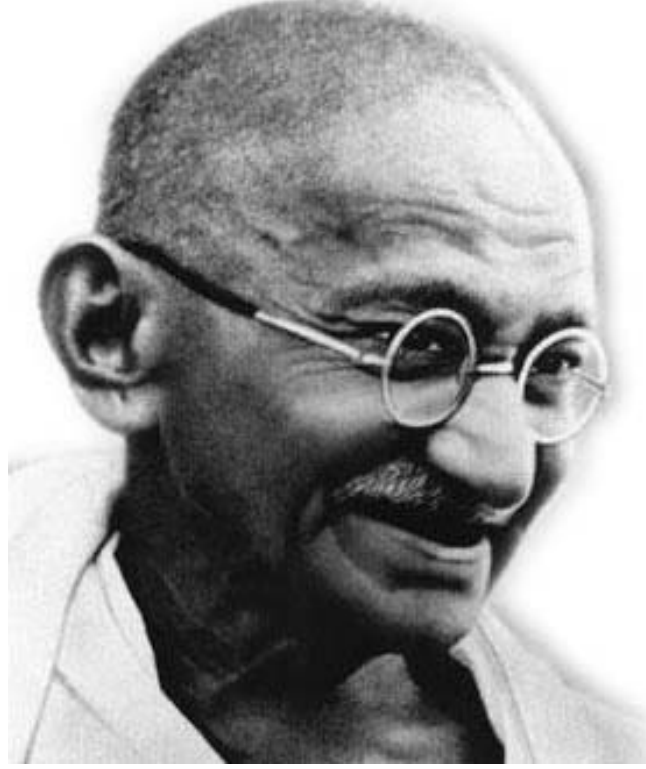
□ मूल्य : 5.00

□ अंक : 11

□ 16-31 जनवरी, 2014

□ वर्ष : 37

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र सर्वोदय जगत



पाकिस्तान और भारत दिल से एक हों

बचपन से ही मुझे हिन्दू-मुसलिम एकता का अनुपम शौक रहा है। मेरी जीवन-उषा की वह उत्कण्ठा जीवन-संध्या में पूर्ण होगी, तो मैं एक नन्हे बच्चे की तरह नाच उड़ूँगा और प्रसन्न होऊँगा। 125 साल जीने की मेरी इच्छा, जो अभी मर गयी है, पुनः जाग्रत हो उठेगी। मेरा वह स्वप्न सफल होने पर ही आपको सच्चा स्वराज्य प्राप्त होगा। भले ही पाकिस्तान और भारत भौगोलिक दृष्टि से अलग रहें, पर दिल से एक होंगे, तो यह ध्येय आपके और मेरे लिए बड़ा ही आदर्शमय और भव्य है। जब तक यह कार्यरूप में परिणत नहीं होता, तब तक किसी प्रसिद्ध चित्रकार के चित्र के बालक की तरह मुझे जरा भी सन्तोष न देगा। इससे कम सिद्धि के लिए मैं जीना नहीं चाहता; और अभी जिन्दा हूँ, तो भी मरा हुआ ही मनिये। इसलिए पाकिस्तान के मेरे मुसलिम मित्र मुझसे जो सलाह माँगते हैं, उनसे कहूँगा कि मेरा यह ध्येय पूरा करने में वे मदद दें।

(बिरला भवन, नयी दिल्ली,
14 जनवरी, 1948)

- मो. क. गांधी

सर्वोदय जगत

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

वर्ष : 37, अंक : 11

16-31 जनवरी, 2014

सर्व सेवा संघ

द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

संपादक

बिमल कुमार

मो. 9235772595

प्रसार व्यवस्थापक

उमेश कुमार

मूल्य : पांच रुपये

शुल्क

वार्षिक : 100 रुपये

आजीवन : 1,000 रुपये

संपादकीय कार्यालय

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी-221 001 (उ.प्र.)

फोन : 0542-2440-385/223

ईमेल: sarvodayajagat@gmail.com

sarvodayavns@yahoo.co.in

Website : sssprakashan.com

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये

आधा पृष्ठ : 1000 रुपये

चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

अंदर के पृष्ठों पर...

1. अपना हिन्दुस्तान कहाँ... 2
2. गांधी शहादत की पृष्ठभूमि... 3
3. हे राम!... 4
4. गांधी के बाद अहिंसक... 9
5. विश्व में अहिंसा के... 11
6. गुजरात और बिहार के... 12
7. अच्छे विचारों के अकाल... 15
8. अभय साधक-बाबा आमटे... 17
9. राजनीति का शुद्धीकरण... 20

अपना हिन्दुस्तान कहाँ है?

□ दयालसिंह पंवार

भूमण्डलीकरण के युग में अब अपनी पहचान कहाँ है ?
आओ खोजें सकल विश्व में अपना हिन्दुस्तान कहाँ है ?

भूमण्डलीकरण के मद में हम सब कैसे झूम रहे हैं !
टी.वी. टेलीफोनों से ही सारी दुनिया घूम रहे हैं ,
साक्षरता का आन्दोलन है, चिन्तन का विस्तार कहाँ है ,
जन-जन में जो फैल रही उस शिक्षा में संस्कार कहाँ है ?
बड़ी-बड़ी बहसों में बोलो अमित शास्त्र का ज्ञान कहाँ है ?
आओ खोजें सकल विश्व में अपना हिन्दुस्तान कहाँ है ?

महानगर में गगन चूमते ऊँचे-ऊँचे भवन खड़े हैं ,
बड़े-बड़े भवनों में झाँकें तो टूटे परिवार पड़े हैं ,
टी.वी. टेलीफोन बज रहे पर आपस में बात बन्द है ,
अब की कविता जैसे इन परिवारों का छन्द भंग है ।
जन्म-जन्म के बन्धन वाला बोलो दैव-विधान कहाँ है ?
आओ खोजें सकल विश्व में अपना हिन्दुस्तान कहाँ है ?

यन्त्रों की ताकत में बोलो मंत्रों का मृदु घोष कहाँ है ?
धन से कोष भरे हैं लेकिन फिर भी वह सन्तोष कहाँ है ?
राजनीति की कूट चाल में जन-सेवा का भाव कहाँ है ?
राम-राज में जरा बताओ केवट की वह नाव कहाँ है ?
कितने ही अपहरण हो रहे किन्तु कहो हनुमान कहाँ है ?
आओ खोजें सकल विश्व में अपना हिन्दुस्तान कहाँ है ?

कविकुलगुरु की पावन प्रतिभा का वह मृदु संस्कार कहाँ है ?
फूहड़ गीतों में खोया जो वह मधुरस शृंगार कहाँ है ?
शासन को आन्दोलित कर दे, कविता की वह धार कहाँ है ?
भोजराज की कविता वाला वह वैभव विस्तार कहाँ है ?
तुलसी, सूर, निराला, दिनकर औ रहीम, रसखान कहाँ है ?
आओ खोजें सकल विश्व में अपना हिन्दुस्तान कहाँ है ?

भूमण्डलीकरण के युग में यदि अपनी पहचान नहीं है ,
राष्ट्र-भक्ति और स्वाभिमान का यदि जीवन में स्थान नहीं है ,
यदि यान्त्रिक जीवन में अपनी परम्परा का मान नहीं है ,
तब तो यह सचमुच इण्डिया है भारत, हिन्दुस्तान नहीं है ।

गांधी शहादत की पृष्ठभूमि

गांधीजी की शहादत को हम कैसे याद करें और उससे क्या सीखें। इसके लिए जरूरी है कि हम उस पृष्ठभूमि का पुनरावलोकन करें, जिस पृष्ठभूमि में उस घटनाक्रम का विकास हुआ था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बीच में 'भारत छोड़ो' के आंदोलन के कारण लार्ड वैवेल व अन्य ब्रितानी हुक्मरान कांग्रेस से बेहद खफा थे। वे मुस्लिम लीग को इस बात के लिए प्रेरित कर रहे थे कि मुस्लिम लीग पाकिस्तान की मांग पर अड़ी रहे तथा इस बात को पुरजोर ढंग से रखे कि कांग्रेस पार्टी पूरे भारत का प्रतिनिधित्व नहीं करती है। उन्हें यह भी विश्वास था कि कैबिनेट मिशन का प्रस्ताव कांग्रेस पार्टी स्वीकार नहीं करेगी। इस समझ के अंतर्गत जो रणनीति बनी, उसके तहत मुस्लिम लीग की वर्किंग कमेटी ने 6 जून, 1946 को अपनी बैठक में कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तथा स्वतंत्र पाकिस्तान की मांग छोड़ दिया था। वे समझते थे कि कांग्रेस इसे स्वीकार नहीं करेगी, और बाद में वे फिर अलग पाकिस्तान की मांग पर अड़ जायेंगे। लेकिन कांग्रेस पार्टी ने अपनी 25 जून, 1946 की मीटिंग में इसे स्वीकार कर लिया।

इस असफलता के बाद लार्ड वैवेल एवं मुस्लिम लीग ने मिलकर एक नया षड्यंत्र रचा। हिन्दू-मुस्लिम एक राष्ट्र के अंग नहीं हैं, यह स्थापित करने के लिए मुस्लिम लीग ने 16 अगस्त, 1946 को सीधी कार्यवाई (Direct Action) का दिन घोषित किया। यह सीधी कार्यवाई, ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ अलग पाकिस्तान की मांग न होकर, कांग्रेस के खिलाफ थी। और इसका मूल लक्ष्य दंगे भड़काना था। बंगाल में सुहरावर्दी ने इसे सरकारी नीति तक घोषित कर दिया।

सुहरावर्दी ने सीधी कार्यवाई का नेतृत्व किया, फलस्वरूप बंगाल में दंगे भड़क उठे।

ब्रिटिश अपनी नीति में पूर्णतः सफल

हुए। इतना ही नहीं, लार्ड वैवेल के भारत तोड़ो अभियान को सफल बनाने के लिए मुस्लिम लीग, अंतरिम सरकार में तो शामिल हुई, लेकिन संविधान सभा में शामिल नहीं हुई। इस बीच सीधी कार्यवाई का कार्यक्रम चलता रहा।

पाकिस्तान अंततः कैसे बना, यह एक अलग इतिहास है। यहां हम इस दौर में गांधीजी की भूमिका की चर्चा कर रहे हैं। 'सीधी कार्यवाई' के आह्वान के फलस्वरूप बंगाल एवं बाद में बिहार में दंगे भड़क उठे।

भारत के समाज में एक कलंक उभर कर आने लगा। यह कलंक था, अधिक आबादी वाले धर्मावलम्बियों द्वारा कम आबादी वाले धर्मावलम्बियों पर हिंसा, लूट एवं बलात्कार का कहर। ऐसे में समाज को बचाने का कार्य सर्वप्रमुख हो गया था। सत्ता का हस्तांतरण कैसे होगा, एक ओर यह खेल चल रहा था और दूसरी ओर समाज जल रहा था।

ऐसे में गांधीजी ने अपनी भूमिका सुनिश्चित की। जहां कहीं भी बहुसंख्यकों की हिंसा थी, वहां वे उसके खिलाफ जनमत बनाने में लग गये। अक्टूबर, 1946 में वे बंगाल के लिए रवाना हुए। 6 नवंबर, 1946 से फरवरी 1947 तक नोआखाली में रहे। 2 मार्च को चलकर 5 मार्च को पटना पहुंचे। बीच में 1 अप्रैल से 11 अप्रैल तक माउंटबैटन से बात करने के लिए दिल्ली में रहे तथा 22 अप्रैल, 1947 को पुनः बिहार वापस चले गये। फिर 2 मई से 7 मई तक दिल्ली में रहे तथा 8 मई को कलकत्ता चले गये। 25 मई से 31 जुलाई तक दिल्ली में रहे, फिर कश्मीर, लाहौर, पटना और बंगाल में 7 सितंबर, 1947 तक प्रवास किया। प्रत्येक स्थान पर राष्ट्रीय एकता एवं बहुसंख्य के धार्मिक उन्माद के विरुद्ध लोगों को संगठित करने का कार्य किया। विडम्बना देखिये, जब वे नोआखाली गये तो सांप्रदायिक शक्तियों ने कहा कि आप बिहार क्यों नहीं जाते जहां

मुसलमानों पर अत्याचार हो रहा है। जब बिहार गये तो वहां की सांप्रदायिक शक्तियों ने कहा कि आप वहां क्यों नहीं जाते जहां हिन्दुओं पर अत्याचार हो रहा है।

राजसत्ता अपने कर्तव्य में असफल हो रही थी तथा बहुसंख्यकों की सांप्रदायिकता न तो समाज की ताकत बनने दे रही थी, न राष्ट्रीय एकता का निर्माण होने दे रही थी। इस प्रकार आजादी पाने के एक वर्ष पूर्व से अपने जीवन के अंतिम क्षण तक गांधीजी हर जगह समाज की ताकत बनाने तथा राष्ट्रीय एकता का निर्माण करने में जुटे थे तथा हर जगह बहुसंख्यकों की सांप्रदायिकता उनके खिलाफ जहर फैलाने में लगी थी।

इस दौर में उन्हें एक बार अर्ध-उपवास एवं दो बार उपवास भी करना पड़ा। अक्टूबर-नवंबर, 1946 में अपने अर्ध-उपवास की चर्चा करते हुए गांधीजी ने वक्तव्य दिया कि "मुख्यतः स्वास्थ्य के कारणों से मैंने कलकत्ता पहुंचने के बाद अपने को कम-से-कम भोजन पर रखा। वह खुराक अब बिहार की दुखान्त घटनाओं की जानकारी के बाद प्रायश्चित के रूप में चल रही है। यदि भूल करने वाले बिहारी अपना सुधार नहीं करते, तो यह थोड़ा आहार (अर्ध-उपवास) आमरण अनशन में परिवर्तित हो जायेगा।"

1 सितंबर, 1947 को कलकत्ते में सांप्रदायिक सद्भावना हेतु गांधीजी द्वारा उपवास शुरू हुआ, जिसे 4 सितंबर की रात उन्होंने खत्म किया। इसी प्रकार 13 जनवरी से 18 जनवरी, 1947 के बीच उन्होंने नई दिल्ली में सांप्रदायिक दंगों को शांत करने के लिए उपवास रखा तथा सात सूत्री प्रतिज्ञा-पत्र पर महत्वपूर्ण दलों व संस्थाओं के प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर के उपरांत उपवास समाप्त किया।

बहुसंख्य सांप्रदायिकता की राजनीति के खिलाफ वे संघर्ष करते रहे तथा अंततः बहुसंख्य सांप्रदायिकता की राजनीति ने ही उनके शरीर को मिटाने का कुचक्र रचा। **बिमल कुमार**

हे राम!

□ मनुबहन गांधी

नियमानुसार बापू प्रार्थना के लिए जगे, मुझे भी जगाया।...बहन उठी नहीं। आजकल सुशीला बहन नहीं हैं, इसलिए गीता-पाठ मुझे ही करना पड़ता है। भाई साहब और प्यारेलालजी जागते रहते हैं, तो वे आवाज में आवाज ही मिलते हैं।...तो गीता के श्लोक बोल ही नहीं पाते।...उठे नहीं, इसलिए बापू ने दातुन करते हुए आज भी एक बात कही : “मैं देख रहा हूँ कि मेरा प्रभाव मेरे निकट रहने वालों पर से भी उठता जा रहा है। प्रार्थना तो आत्मा को साफ करने की झाड़ू है। मैं प्रार्थना में अटल श्रद्धा रखता हूँ। ऐसी प्रार्थना करना...जैसी को पसन्द नहीं पड़ता, तो फिर उसे चाहिए कि मेरा त्याग ही कर दे। इसी में दोनों का भला है। यदि तुझमें इतनी हिम्मत हो, तो मेरी ओर से उसे यह कह देना। समझा देना कि ये सब बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं। यह सब देखने के लिए भगवान अब मुझे अधिक न रखे, यही चाहता हूँ। आज मैं तुझसे यह भजन सुनना चाहता हूँ :

‘थाके न थाके छताय हो,

मानवी न लेजे विसामो।’

आश्चर्य की बात है कि आज पहली बार बापू ने यह भजन पसन्द किया! मुझे खुद को बापू के बारे में कुछ विलक्षण-सा ही लग रहा है। कभी-कभी यह भी आशंका होने लगती है कि कदाचित् ये पुनः अनशन तो नहीं करने जा रहे हैं? आज दोपहर को सरदार दादा विशेष रूप से मिलने के लिए आने वाले हैं। वे और बापू एकान्त में बातचीत करेंगे। उसके बाद कल-परसों मंत्रिमण्डल की बैठक बुलाकर सारा निर्णय किया जायेगा। देखें, ईश्वर इसे कहाँ तक सफल करता है? कल सुबह भाई भी आ रहे हैं।

प्रार्थना के बाद मैं बापू को बरामदे से

भीतर ले आयी। उन्हें कपड़ा ओढ़ाया। बापू कल रात तैयार किये हुए कांग्रेस-संविधान के मसविदे का संशोधन करने बैठ गये। नियमानुसार पौने 5 बजे गरम जल, शहद और नीबू और पौने 6 बजे सन्तरे का रस 16 औंस लिया। अभी उपवास की कमजोरी तो है ही। लिखते-लिखते थक जाने से बापू बीच ही में सो गये और मैंने उनके पैर भी दबाये।

पू. किशोरलाल भाई को कल जो पत्र लिखा था, नकल न हो सकने के कारण वह बापू के कागजों में ही पड़ा रह गया। बापू को यह अच्छा नहीं लगा। मैंने सहज ही पूछा कि “इसमें एक पंक्ति यह लिख दूँ कि हम लोग दूसरी को वर्धा जानेवाले हैं?”, तो बापू ने कहा : “कल की कौन जानता है? अगर जाना तय ही हो जायेगा, तो आज प्रार्थना में कह दूँगा। फिर रात में रेकार्ड रिले होगा, तो उसमें वह आ ही जायेगा। फिर भी इस तरह चिट्ठी पड़ी रहनी नहीं चाहिए थी। भले ही यह काम बिसेन का हो, लेकिन तू मेरे किसी भी काम से मुक्त नहीं हो सकती। दूसरों की गलती होने पर भी मैं उसे तेरी ही गलती मानता हूँ, अगर तू उसे स्वीकार करे।” मैंने कहा : “मुझे तो स्वीकार करना ही होगा।” बापू प्रसन्न हो गये।

टहलते समय श्रीमती राजेन नेहरू आयीं। मैं घूमने के लिए जानेवाली नहीं थी, पर मुझे जबर्दस्ती चलने के लिए कहा।

8 बजे नियमानुसार मालिश और स्नान हुआ। मालिश के समय अखबार देखे। बंगाली पाठ किया। फिर मालिश के कमरे से बाथरूम में लाया गया। उस समय उन्होंने प्यारेलालजी से कहा : “कल रात मैंने कांग्रेस का मसविदा (संविधान) ‘हरिजन’ में भेजने के लिए बना रखा है। उसे ठीक से देख लें और विचारों

की जो कमी रह गयी हो, उसे पूरी कर दें। बहुत ही थके-माँदे मैंने उसे तैयार किया है।”

नियमानुसार मैं बापू को बाथ देती रही। मुझसे कहने लगे कि “तू हाथ की कसरत करती है या नहीं?” मैंने ‘ना’ कहा। इस पर कहने लगे : “यह तो मुझे जरा भी पसन्द नहीं।” मैंने कहा : “फिर तो करना ही होगा।” बापू ने कहा : “अवश्य! तेरा वजन नहीं बढ़ता और तबीयत नहीं सुधरती, इससे मुझे बहुत ही दुःख होता है। जब तू अपने बाप के यहाँ से नोआखाली आयी, तो कितनी तन्दुरुस्त थी! तेरा शरीर नहीं सुधरता, इसका कारण तेरा भावुक और संवेदनशील स्वभाव ही है। कभी किसी के दुःख से अधिक दुःखी या किसी के सुख से अधिक प्रसन्न न होना चाहिए। दोनों में सन्तुलित स्वभाव रखने पर ही भगवान का सान्निध्य पाना आसान होता है। यह कानून मेरा नहीं, अनादिकाल से चला आ रहा है और सभी धर्म-ग्रन्थों में लिखा है। स्थितप्रज्ञ होने के उपायों में इसे भी एक माना गया है। तू 18 वर्ष की उभरती छोकरी है। मैंने तेरा मन कितना गढ़ा है, इसका खयाल तुझे आज नहीं हो सकता। नोआखाली से लेकर आज तक मैंने तुझे खूब तपाया है और तरह-तरह के विलक्षण अनुभवों से गढ़ा है। भले ही आज तुझे इसका मूल्य न मालूम पड़े, लेकिन मेरे ये शब्द लिख रखना कि तेरे भावी जीवन के लिए यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा, कदाचित् मैं जिन्दा रहूँ या न रहूँ।

“तू जानती ही है कि...आज सुबह प्रार्थना के समय नहीं उठी। इसलिए मैं सोच रहा हूँ कि आखिर मुझमें कहाँ खामी है? दूसरी लड़कियाँ या और कोई इस यज्ञ में मेरा साझीदार नहीं। अकेली तू ही मेरी सेवा और मेरे कामों की जिम्मेदारी उठा रही है। इसमें तनिक भी भूल

नहीं होने देती। लेकिन अपनी तबीयत सँभाल रखना भी मेरी सेवा का एक अंग है। अतः यह जिम्मेदारी भी तुझे अदा करनी ही चाहिए।”—बाथ के समय बापू ने बड़े ही प्रेम से ये बातें कहीं और मेरी पीठ सहलायी।

बाथ से निकलने के बाद वजन किया गया—साढ़े 109 पौण्ड हुआ। भोजन में उबाला हुआ शाक, बारह औंस दूध, एक-आध मूली और करीब चार-पाँच पके टमाटर और चार सन्तरोँ का रस लिया। खाते समय प्यारेलालजी के साथ नोआखाली के विषय में बातें हुईं। उन्होंने आबादी की अदला-बदली के बारे में बापू से पूछा, जिस पर बापू ने साफ-साफ कह दिया :

“हम लोगों ने तो ‘करेंगे या मरेंगे’ यह मंत्र लेकर ही नोआखाली का वरण किया है। भले ही आज मैं यहाँ बैठा हुआ हूँ, पर काम तो नोआखाली का ही चल रहा है। हमें जनता को भी इसके लिए तैयार करना चाहिए कि वह अपनी इज्जत और सम्मान बनाये रखने के लिए बहादुरी के साथ वहीं रहे। भले ही अन्ततः वहाँ गिने-गिनाये लोग ही रह जाएँ, लेकिन जहाँ दुर्बलता से ही सामर्थ्य पैदा करनी हो, वहाँ दूसरा उपाय ही क्या है? आखिर सशस्त्र युद्ध में भी साधारण सिपाहियों का सफाया होता ही है। फिर अहिंसक युद्ध में उससे भिन्न और हो ही क्या सकता है?”—और उन्हें नोआखाली जाने का ही सुझाव दिया।

फिर पैरों में घी मलवाते हुए बापू ने थोड़ा आराम किया। थोड़ी देर सोकर पुनः उठे और बाथरूम में जाने के लिए बाहर के पटरे पर से आ रहे थे। मैंने कहा : “बापू! अकेले ही अकेले आ रहे हैं, तो कैसे लग रहे हैं?” (कमजोरी के कारण इधर वे बिना किसी का सहारा लिये चलते नहीं थे) बापू ने कहा : “क्यों, अच्छा दीखता है न? ‘एकला चलो’!”

साढ़े 12 बजे ‘डॉ. भार्गव को नर्सिंग होम बनाने के लिए एक मकान चाहिए;’ और यतीमखाने की बात कही गयी। बापू ने कहा कि “जब स्थानीय मुसलमान यहाँ आते हैं, तब मुझे इसके लिए याद दिलाएँ।” उन्होंने यह भी कहा कि “हुकूमत मुझसे डर-डरकर कब तक चलेगी? मेरे डर से नहीं, बल्कि अपने मन से करना चाहिए। जब नियागी यहाँ आयें, तो पूछ देखें।” बापू के पास मुसलमान लोग आये, तो उन्हें याद दिलायी गयी। लेकिन उन्होंने कहा कि “अभी उसे न दिया जाए, तो अच्छा है।” बापू ने कहा : “अच्छा, मैंने तो वैसे ही पूछ लिया। इसके पीछे हमें वक्त देने की जरूरत ही क्या है?”

उसके बाद मौलाना रहमान ने सेवाग्राम के बारे में पूछते हुए कहा कि “आप वहाँ जा सकते हैं, पर 14 को वापस लौट ही आएँ।” बापू ने कहा : “हाँ, चौदह को तो मैं यहीं रहूँगा। फिर वह सब तो खुदा के हाथ में है। वह तो आसमानी सुलतानी बात है।”

महादेव भाई की जीवनी लिखने का—डायरी-संपादन करने का काम व्यवस्थित होने जा रहा था। उस बारे में शान्तिकुमार भाई के साथ बातें कीं। शान्तिकुमार भाई की शिकायत थी कि “चन्द्रशंकर भाई और नवजीवन के बीच झगड़ा चल रहा है। अधिक पैसा लेने की बात है।”

बापू ने कहा : “जहाँ देखता हूँ, वहीं, जैसे यादव आपस में कट मरे, वही स्थिति हमारी है। हम लोग आपस में झगड़ा कर समाज की कितनी हानि कर रहे हैं, इसका खयाल किसी को भी नहीं आता। इसमें आप या और कोई कर ही क्या सकता है? इन सबमें मेरी ही खामी है। ईश्वर ने ही मुझे अन्धा बना दिया हो, तो कोई क्या कर सकता है? फिर भी अपने जीते जी यह सब अपनी आँखों देखकर जितना सुधार सकूँ, उतना सुधार लूँगा, जिससे भावी पीढ़ी को गाली न

खानी पड़े; इतना ही भगवान का आभार मानिये।

“यह काम मुझे ही करना चाहिए। डायरी को अच्छी तरह ग्रन्थरूप में बनाना ही होगा। नरहरि की तबीयत साथ नहीं देती और अब?...इसने तो मेरे सभी कामों से छुट्टी पा ली है। लेकिन वह बिना समझे-बूझे ली है, यह कैसे कहा जा सकता है? क्योंकि सभी अपने-अपने विचार के लिए स्वतन्त्र हैं। यदि चन्द्रशंकर यह बोझ उठाता है, तो वह अपनी कमाई खर्च करेगा। इन दोनों के अक्षरों में कितना साम्य है? मैं उसे लिखूँगा।”

डॉ. सिल्वा और उसकी लड़की लंका में मुख्य प्रतिनिधि थे। उन्हें अपना ऑटोग्राफ दिया।

दोपहर में बिसेन भाई के साथ चिट्ठियों का रुका हुआ काम पूरा करने के लिए कहा। 2 बजे मिट्टी ली। पैर दबाये। बापू ने मिट्टी उतारी। हम लोग बापू से छुट्टी लेकर शहर में एक सम्बन्धी के यहाँ मिलने गये। वहाँ से सवा 4 बजे लौटे।

यदि जीवित रहा तो...

बापू और सरदार दादा बातचीत कर रहे थे।...काठियावाड़ के बारे में भी चर्चा हुई। इसी बीच काठियावाड़ के नेता रसिक भाई पारीख और टेबर भाई भी आ गये। उन्हें बापू से मिलना था। लेकिन आज तो एक क्षण खाली नहीं है। फिर भी मैंने उनसे कहा कि “बापू से पूछकर समय तय किये देती हूँ।” बापू और सरदार दादा बातों में एकदम तल्लीन थे। मैंने पूछा तो कहने लगे : “उनसे कहो कि यदि जिन्दा रहा, तो प्रार्थना के बाद टहलते समय बातें कर लेंगे।” मैंने उनसे प्रार्थना के लिए रुक जाने को कहा। कारण यदि वे प्रार्थना के बाद तत्काल न मिल लेंगे, तो और कोई घुस ही जाएगा और फिर बातें न कर पाएँगे। वे रुक गये और बापू के कमरे में जा बैठे।

(इसके बाद की डायरी में पहली फरवरी की रात में दो बजे लिख रही हूँ। क्या लिखूँ। समझ में ही नहीं आता! पूरे बिरला-भवन में रोने के सिवा कुछ भी नहीं है। अरे! क्या बापू सोये हुए तो नहीं हैं? मुझे इतनी देर तक लिखती देख उलाहना देने के लिए उठकर तो नहीं आएँगे? नहीं, नहीं, बापू! आप मेरी भूल क्षणभर भी क्षमा नहीं करते थे और आज इतने उदार हो गये? हाय, मुझ पर गजब ढा गया! मुझसे कहते थे : “इस यज्ञ में तू और मैं दो ही हैं। तू मुझे छोड़ सकती है, पर मैं तुझे नहीं छोड़ सकता।” लेकिन आज तो बापू! आप ही मुझे छोड़ गये! भाई कल आनेवाले हैं। क्या मुझे सौंप देने के लिए ही तो चार दिन पहले उनको चिट्ठी नहीं लिखी? कुछ भी नहीं सूझता!...पण्डितजी का यह बुक्का फाड़-फाड़कर रोना अच्छे-अच्छे धीर-गम्भीर लोगों का भी हृदय विदीर्ण कर देता है। नन्हा गोपू कह रहा है : “मनु बहन! दादा क्यों सोये हैं?”)...

थाके न थाके छताये हो!

...बापू सरदार दादा के साथ बातचीत में इतने तन्मय हो गये थे कि दस मिनट देर हो गयी। इस गम्भीर वातावरण में उन्हें विक्षेप करने की किसी को भी हिम्मत नहीं हुई। आखिर मणि बहन ने हिम्मत की ही, क्योंकि यह सभी जानते थे कि यदि बापू को समय का ध्यान न कराया जाए, तो बाद में हम लोगों पर नाराज हो जाएँगे। बातें करते हुए ही बापू ने भोजन भी कर लिया। भोजन में चौदह औंस बकरी का दूध, चार औंस शाक का रस और तीन सन्तरे थे। बातें करते हुए उन्होंने कताई भी कर ली। बिना यज्ञ किये खाना चोरी का खाना माना जाता है। अतः वे बिना कताई किये रह ही कैसे सकते हैं? आज ब्राह्म मुहूर्त में कभी न कहलवाया हुआ यह भजन कि ‘थाके न थाके छताये हो, मानवी न लेजे विसामों’ मुझसे गवाया। क्या

बापू उसे साकार करना चाहते रहे हैं? चाहे जो हो, पलभर भी विश्राम लिये बगैर अपनी ज्वलंत प्रवृत्ति का वेग और भी बढ़ा दिया। वे एकदम उठ खड़े हुए।

नसों का धर्म

मैंने अपने हाथ में रोज की तरह कलम, बापू की माला, पीकदानी, चश्मे का केस और जिस पर प्रवचन लिखती हूँ, वह नोटबुक ले ली। दस मिनट देर हो जाने के लिए बापू ने रास्ते में नापसन्दगी जाहिर की : “आप लोग ही तो मेरी घड़ी हैं न? फिर मैं घड़ी के लिए क्यों रुका रहूँ?” खासकर आजकल बापू घड़ी देखते ही नहीं। समयानुसार एक के बाद एक सारा काम यों ही कर लिया करते हैं। घड़ी को चाबी भी हम लोगों में से ही कोई दे दिया करता था। इसीलिए उन्होंने यह कहा। मैंने कहा कि “बापू! आपकी घड़ी बेचारी उपेक्षा से दुबली होती होगी।” इसी के उत्तर में उन्होंने यह बात कही। विनोद तो किया ही, पर साथ ही यह भी कहा कि “मुझे ऐसी देरी बिलकुल पसन्द नहीं।”

चाँद बहन को दिल्ली में ही रखने की बात कही। “अभी खुराक की मात्रा थोड़ी-सी ही बढ़ायी है।” यद्यपि अनशन के बाद अनाज तो अभी शुरू करना ही नहीं है, “पर अब प्रवाही (तरल खाद्य) कम करना है” ये बातें करते हुए प्रार्थना-स्थल की सीढ़ियाँ चढ़े। कहने लगे : “प्रार्थना में दस मिनट देर हो गयी, इसमें आप लोगों का ही दोष है।” सरदार दादा दो-चार दिनों बाद आये थे और ऐसे गम्भीर प्रश्नों पर चर्चा कर रहे थे कि टोकने की हिम्मत ही नहीं हुई, यह भी बापू को पसन्द नहीं पड़ा। उन्होंने कहा : “नसों का तो धर्म है कि साक्षात् ईश्वर भी बैठा हो, तो भी वे अपना धर्म, अपना कर्तव्य पूरा करें। किसी रोगी को दवा पिलाने का समय हो गया हो और किसी भी कारण यह विचार करते रहें कि उसके पास कैसे जाया जाए, तो

रोगी मर ही जाएगा। यह भी ऐसी ही बात है। प्रार्थना में एक मिनट की देर भी मुझे खल जाती है।”

यह नियम-सा बन गया था कि प्रार्थना में जाते समय हम लोग ही बापू की लाठी का काम करती थीं। कभी हम लोग नाराज हो जाएँ और इस नियम के अनुसार लाठी बनना न चाहें, तो बापू हम लोगों को जबरदस्ती पकड़कर लाठी बना लेते थे। लौटते समय दूसरी लड़कियाँ रहती थीं।

हे राम!

बापू चार सीढ़ियाँ चढ़े और सामने देख नियमानुसार हम लोगों के कन्धे पर से अपने हाथ उठाकर उन्होंने जनता को प्रणाम किया और आगे बढ़ने लगे। मैं उनके दाहिनी ओर थी। मेरी ही तरफ से एक हृष्ट-पुष्ट युवक, जो खाकी वर्दी पहने और हाथ जोड़े हुए था, भीड़ को चीरता हुआ एकदम घुस आया। मैं समझी कि यह बापू के चरण छूना चाहता है; रोज ऐसा ही हुआ करता था। बापू चाहे जहाँ जाएँ, लोग उनका चरण छूने और प्रणाम करने के लिए पहुँच ही जाते थे। हम लोग भी अपने ढंग से उनसे कहा करते कि बापू को यह ढंग पसन्द नहीं। पैर छूकर चरण-रज लेनेवालों से बापू भी कहा ही करते कि “मैं तो साधारण मानव हूँ। मेरी चरण-रज क्यों लेते हैं?” इसी कारण मैंने इस आगे आने वाले आदमी के हाथ को धक्का देते हुए कहा : “भाई! बापू को दस मिनट देर हो गयी है, आप क्यों सता रहे हैं?” लेकिन उसने मुझे इस तरह जोर से धक्का मारा कि मेरे हाथ से माला, पीकदानी और नोटबुक नीचे गिर गयीं। जब तक और चीजें गिरीं, मैं उस आदमी से जूझती ही रही। लेकिन जब माला भी गिर गयी, तो उसे उठाने के लिए नीचे झुकी। इसी बीच दन-दन...एक के बाद एक तीन गोलियाँ दर्गीं। अँधेरा छा गया! वातावरण धूमिल हो उठा और गगनभेदी आवाज

हुई। “हे रा—म! हे राम...” कहते हुए बापू मानो सामने पैदल ही छाती खोलकर चले जा रहे थे। वे हाथ जोड़े हुए थे और तत्काल वैसे ही नीचे जमीन पर आ गिरे। कितने ही लोगों ने उस समय बापू को पकड़ने का यत्न किया। आभा बहन भी नीचे गिर गयीं। एकदम उन्होंने बापू का सिर अपनी गोद में ले लिया। मैं तो समझ ही नहीं पायी कि आखिर यह क्या हो गया? यह सारी घटना घटते मुश्किल से 3-4 मिनट लगे होंगे। धुँआ इतना घना था। गोलियों की आवाज से मेरे कान बहरे-से हो गये। लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी।

हम दोनों लड़कियों का क्या हाल हुआ होगा, यह तो शब्दों में लिखा ही नहीं जा सकता। सफेद वस्त्रों पर से रक्त की धार छूट पड़ी। बापू की घड़ी में ठीक 5 बजकर 17 मिनट हुए थे। मानो बापू जुड़े हुए हाथों से हरी घास में पृथ्वी माता की गोद में अपार निद्रा में सो रहे हों और हमारे अनुचित साहस पर नाराज न होने पर माफ कर देने के लिए कह रहे हों।

उन्हें कमरे में ले जाने तक दस मिनट तो लग ही गये। दुर्भाग्य से वहाँ कोई डॉक्टर भी नहीं मिला। सुशीला बहन की प्राथमिक चिकित्सा (फर्स्ट एड) की पेट्टी में खोजने पर भी कोई खास दवा नहीं मिली। वे कहते ही थे कि “मेरा सच्चा डॉक्टर तो रामजी है।” हम अल्पात्मा लोग अपने स्वार्थ के लिए उन्हें जिलाने के निमित्त उनके अपने मात्र के लिए स्वीकृत इस सिद्धान्त को भ्रष्ट कर दें, शायद इसीलिए हमें उस समय कुछ सूझ नहीं पाया हो! सरदार दादा तो अभी अपने घर भी नहीं पहुँचे होंगे कि पीछे लौटे। हम लोग तो बुक्का फाड़-फाड़कर रो रहे थे, पर बापू को आज दया नहीं आ रही थी! किसी समय मुझे जैसी को उदास देखते, तो उसका कारण जानने के लिए पिल पड़ते और उसे जानकर ही छोड़ते थे। लेकिन आज तो बापू सब कुछ सहन किये जा रहे हैं!

सात बार की ऑटोमेटिक पिस्तौल की पहली गोली मध्य रेखा से साढ़े तीन इंच दाहिनी ओर नाभि से ढाई इंच ऊपर पेट में लगी। दूसरी मध्य रेखा से एक इंच दूर और तीसरी दाहिनी ओर छाती में मध्य रेखा से चार इंच दूर लगी थी। पहली और दूसरी गोली शरीर के आर-पार हो गयी थी और तीसरी फुफ्फुस में समा गयी थी। उसका ऊपर का कवच बाद में कपड़ों में मिला और आर-पार निकली हुई गोलियाँ तो प्रार्थना-स्थल पर ही मिलीं। अत्यधिक रक्त बहने के कारण चेहरा तो करीब दस मिनट में ही सफेद पड़ गया।

बापू नहीं रहे!

भाई साहब ने तो कलेजे पर पत्थर रखकर अस्पताल में फोन का ताँता ही लगा दिया। बाहर तो हजारों मानवों की भीड़ उमड़ पड़ी थी। भाई साहब बड़ी मुश्किल से सरदार के बंगले से होकर विलिंगटन अस्पताल में पहुँचे। लेकिन वहाँ से भी निराश होकर वापस लौट आये। इस बीच कन्हैयालाल मुंशी आ गये। सरदार दादा भी तुरंत पहुँच गये। मणिबेन ने हम लोगों को ढाढ़स बँधाया। मुझे गीता-पाठ शुरू करने के लिए कहा। मणिबेन के आने से और उनके तथा सरदार दादा के आश्वासन की ममताभरी मदद मिलने से मैं अपने को थोड़ा-सा सँभाल पायी और गीता-पाठ शुरू कर दिया। मुंशीजी ने पाठ में पूरा साथ दिया। इसी बीच कर्नल भार्गव आ पहुँचे और उन्होंने बापू का परीक्षण शुरू कर दिया। दो मिनट तो सरदार दादा से लेकर हम सभी उत्सुकताभरी आश्वासन की एक लहर का अनुभव करने लगे। ऐसा लगा कि राहत की कुछ खबर सुनायी पड़े। किन्तु उन्हें तो देखते ही मालूम पड़ गया कि शरीर में अब कुछ जान नहीं। लेकिन कहावत है न कि डॉक्टर तो अन्त तक कुछ कहता ही नहीं। महापुरुष के प्रयाण का यह भयंकर समाचार देना इस डॉक्टर के लिए बापू को

बेधने वाली भीषण गोली से भी कठोर था। इन्होंने मेरा तो ऑपरेशन बड़ी ही सावधानी से किया था। आज सुबह ही इनके और इनके नर्सिंग-होम के बारे में बातें हो चुकी थीं। समय बिताने के लिए इन्होंने दस-पन्द्रह मिनट लगा दिये और अन्त में कह ही दिया : “मनु बेटी! अब बापू नहीं रहे!”...वज्रप्रहार-सा यह समाचार सुनने के साथ ही जिस कमरे में रात में हम बच्चे और बापू किलकारियाँ भरते थे, वहीं भयंकर विलाप छा गया। देवदास काका, गोपू, दोनों सबसे छोटे लड़के और नन्हा पौत्र—सभी बापू की छाती पर कठिन वेदना से विलाप करने लगे। और पण्डितजी तो...ओहो!...भगवन्, ऐसा दिन तो दुश्मन को भी देखने को न मिले! नन्हे बच्चे की तरह सरदार दादा की गोद में मुँह छिपाकर, बिलख-बिलखकर रोने लगे। फिर हम जैसों की तो बात ही क्या थी?

अन्तिम स्मृति की प्रसादी

देखते-देखते लाखों की भीड़ जुट गयी। करीब घण्टेभर तक यह सब चलता रहा। आखिर सरदार दादा ने अपने लौहपुरुष के बाने के अनुरूप इस कठोरतम परीक्षा को भी पास करने में कोई कोर-कसर नहीं दिखायी। अकेले वे ही सभी को ढाढ़स बँधा रहे थे। बापू के चश्मे और चप्पल का कहीं पता न था। तारीख 30 को प्रार्थना में जाने से पूर्व बातचीत करते हुए बापू ने खुद ही अपने नख काटे और मुझे फेंकने के लिए दिये थे। लेकिन मैं रसिक भाई और ढेबर भाई से बातें करने में उलझी रही, इसलिए वे कागज पर के नख वैसे ही रह गये। मैंने उन्हें अनमोल रत्न की तरह उठाकर सन्दूक में रख दिया (उनमें एक अँगूठे का, एक उँगली का और एक छोटी उँगली का भी नख था।)। इसे मैंने आज उनके शरीर की अन्तिम स्मृति की प्रसादी के रूप में अपने पास सुरक्षित रख लिया।

हमारे बापू!

अन्त में लार्ड माउण्टबैटन सभी को शान्त

करने लगे। बाहर की भीड़ पूज्य बापू का समाचार सुनने के लिए आतुर है, इसलिए सरदार दादा ने रेडियो पर सारी बातें प्रसारित कर दीं। पण्डितजी तो बोल ही नहीं पाते थे। सारी हिम्मत बटोरकर बोले : “हमारे बापू...” फिर एक गहरी साँस छोड़कर सिसकते हुए कहा : “बापू अब हमारे पास नहीं रहे।”...उस समय तो धरती भी काँप उठे, इस तरह जनता बिलख उठी।

अब कैसे करना!

आखिर जनता की असाधारण भीड़ देख छत पर से ही बापू का दर्शन कराने की व्यवस्था होने लगी। उस समय मैं किसी काम से बाहर निकली। पण्डितजी ने एकदम मुझे पकड़ लिया और क्षणभर भूल गये, कहने लगे : “मनु! आओ बापू को पूछो, अब कैसे करना! हे भगवन्!...ऐसे विद्वान, अपने देश और दुनिया के इस महापुरुष...!” मैं तो उनके साये में खुलकर रो पड़ी। वे भी उतने ही रोये। उस समय हम दोनों की स्थिति में इतनी एकतानता थी कि इतने बड़े पण्डितजी भी मुझे जैसी नादान बालिका को आश्चस्त करने में असमर्थ सिद्ध हुए।

शायद बापू जाग जाँएँ!

...इसी बीच विभिन्न देशों के राजदूत आते हुए दीख पड़े। उनके साथ पण्डितजी भीतर आये। सतत गीता-पाठ करने में मैं ही प्रमुख थी। भाई साहब और काका सारी व्यवस्था करने के निमित्त बार-बार बाहर आते-जाते थे। सुशीला बहन तो थी ही नहीं। और सबसे श्लोक कहते नहीं बनते थे। प्यारेलालजी भी व्यवस्था में लगे हुए थे। फिर पण्डितजी कहने लगे : “मनु! और जोर से गीता-पाठ करो, शायद बापू जाग जाँएँ!” इतने वैज्ञानिक विद्वान होकर भी वे क्षणभर सब कुछ भूलकर बार-बार आते और बापू के शरीर पर हाथ फेरकर जाते थे, मानो स्वयं भूल तो नहीं कर रहे हों कि बापू सचमुच नहीं हैं।

महात्मा गांधी की जय!

और कैमरे वालों का तो पूछना ही क्या है? छत पर मंच बनाया गया और बापू का शव लाया गया। उसे देख छोटे-बड़े, आबाल-वृद्ध सभी की आँखों से अविरल अश्रुधाराएँ बह पड़ीं, मानो चारों ओर से बारिश ही हो रही हो। ‘महात्मा गांधी की जय’ के नारों से आकाश गूँज उठा। देखते-देखते जनता की श्रद्धांजलियों के साथ फूलों और पैसों का ढेर ही लग गया। सर्वधर्मों की समानतापूर्वक प्रार्थना जारी थी।

दो बजे बापू की देह को नहलाने के लिए बाथरूम में ले जानेवाले थे। लेकिन अच्छा हुआ कि पूज्य शान्तिकुमार भाई आ पहुँचे। वे पूज्य बा के अन्तिम समय में भी उपस्थित थे और आज बापू के भी! उन्होंने हिन्दूधर्मानुसार अन्त्यविधि करायी, याने अर्थी बनाना, गाय के गोबर से सारी जमीन लीपना आदि। यदि वे यह सब न बतलाते, तो साधारणतः हममें से कोई भी यह नहीं जानता था।

यह घड़ी भी उतनी ही भयंकर थी। बापू की देह बाथरूम में लायी गयी। एक-एक कपड़ा उतारा गया। बापू की आस्ट्रेलियन ऊन की शाल गोली से छिद गयी थी और तीन जगह जल भी गयी थी। धोती और चादर भी खून से सराबोर थीं।

बापू की देह पटरे पर सुलायी गयी। रक्त बहते हुए चरण ‘भाई एकलो जाणे रे’ गीत की इस कड़ी को साकार कर रहे थे। काका और हम सब इस तरह आर-पार बिंधे हुए बापू के शरीर को देख फूट-फूटकर रो रहे थे, फिर भी क्रूर विधाता को दया नहीं आयी! हमारी हृदय-विदारक चीखों से किसे क्योंकर दया आये? कारण हम लोग अत्यन्त पापी थे, फिर विधाता की दया की आशा कैसे रख सकते हैं? कड़कड़ाती सर्दी और हिम-सा ठण्डा पानी बापू की देह पर छोड़ने की कौन हिम्मत करेगा?...

बापू को नहलाकर पटरा कमरे के बीच रखा गया। उस पर सफेद खादी की चादर बिछायी गयी और बापू की देह को सुलाया गया। ‘कर ले सिंगार!’

भाई साहब ने उनके गले में सूत का हार और उनकी रामनाम जपने की माला पहनायी। गले में और छाती पर चन्दन-केसर का लेप किया गया। मस्तक पर कुंकुम तिलक लगाया गया। सिर की बाजू पत्तियों से ‘हे राम’ और पैर की बाजू ‘ॐ’ लिखा गया। सारा कमरा गुलाब और अन्य सुगन्धित फूलों से इतना सुवासित हो उठा था, मानो अर्थी सिर्फ फूलों से ही बनी हो। देखते-देखते साढ़े 3 का घण्टा बजा। आज मुझे जगाने के लिए बापू के प्रेमभरे हाथ का स्पर्श न हो पाया। आज भाई साहब को उठाते हुए ‘ब्रजकिशन’ की पुकार सुनायी नहीं पड़ती थी। सभी ने कहा : “नियत समय पर ब्राह्म मुहूर्त में प्रार्थना की जाए।” आज हम लोगों को आदेश देकर ‘नम्यो’ कहने वाले बापू की आवाज नहीं थी। ‘दो मिनट की शान्ति’ कौन कहेगा?

और ‘ईशावास्यमिदं सर्वम्’ से आरम्भ कर सारी प्रार्थना बड़ी मुश्किल से शुरू की। ‘कर ले सिंगार’ भजन गाया और फिर ‘वहाँ से नहीं आना होगा...’। क्या बापू के इस पवित्र और तेजस्वी चेहरे का पुनः कभी भी दर्शन न होगा? ये प्रेमभरी आँखें! यह आश्रयदायी वात्सल्य! यह मुक्त हास्य! अजीब निडरताभरी विशाल छाती और इस चमकते श्वेत चर्म वाले बापू का कभी भी दर्शन न होगा? राग तो है आसावरी, पर है तो भयंकर निराशा ही!

फिर लोगों की असह्य भीड़ हो जाने से बापू की देह ऊपर लायी गयी। देश-विदेश के दूत एवं प्रतिनिधि और सरकारी नौकर भारतीय शान्ति के सम्राट के अन्तिम दर्शन के लिए पहुँच गये थे।

(‘अंतिम झाँकी’ से)
(बिरला-भवन, नयी दिल्ली)
30-1-48

गांधी के बाद अहिंसक प्रतिकार

□ प्रो. कृष्णनाथ

गांधी के बाद अहिंसक प्रतिकार, इस शीर्षक से स्वाभाविक रूप से यह जिज्ञासा जगती है कि गांधी जी के जाने के इतने वर्षों बाद जो अपने देश में और विश्व में अहिंसात्मक प्रतिकार के प्रयोग चल रहे हैं, उनका एक लेखा-जोखा, चाहे संक्षेप में ही क्यों न हो प्रस्तुत किया जाए। किन्तु उसकी कठिनाई यह है कि गांधी जी ने जो व्यक्तिगत साधना की और उनकी सत्य और अहिंसा की जो कल्पना थी और जो व्रत था, उसे उन्होंने आम लोगों के लिए पहली बार प्रस्तुत कर दिया। सत्य और अहिंसा उतने ही पुराने हैं, जितने ये अरावली के पर्वत, जितना गंगा यमुना नदी का जल, सिन्धु और यह आकाश। किन्तु, यह मूल रूप से या प्रधान रूप से महाव्रत के रूप में पालन किये जाते थे।

पतंजलि के योगसूत्र में जिन पांच महाव्रतों को बताया गया है, जो जाति-देश-काल-समय से अनविच्छिन्न हैं, उनमें सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह शामिल हैं। किन्तु सत्य तो पतंजलि से भी पुराना है। सत्य यानि सत्—जो है। और उसमें यम् प्रत्यय लगाकर सत्य, सतोभावः इति सत्यम्। जो होने का भाव है, वह सत्य है। जो है सो है। और जो होने का भाव है वह सत्य है। जो है, वह नहीं भी रहता है। लेकिन सत्य, उसके होने का भाव बना रहता है। तो दक्षिण अफ्रीका में जब उनका रंगभेद के खिलाफ आंदोलन चल रहा था, तो आंदोलन तो था, लेकिन उसका कोई नाम नहीं था। यह तो विदित है। तो उस आंदोलन को एक नाम देने के लिए उन्होंने ईनाम की घोषणा की। और उसमें सत्य का आग्रह—सदाग्रह नाम सुझाया गया, जिसमें थोड़ा संशोधन कर सत्य लेकर और आग्रह को शामिल किया गया। इस प्रकार से उसकी उत्पत्ति या व्युत्पत्ति हुई। तो यह सत्याग्रह शब्द जन्मा और उसके भी पहले वह वस्तु, वह संतान पहले से उपस्थित थी। कबीर की

उलटबांसी में जब पिता का जन्म हुआ तो पुत्र पिछवाड़े खड़े थे, पुत्र पहले ही प्रगट हो चुके थे। और 1906 से आज तक यमुना में कितना जल बह गया। इस बीच सत्याग्रह के अनेक प्रयोग गांधीजी ने स्वयं देश में किये। और फिर अब तो उसका एक विश्वरूप प्रगट हो चुका है। वह जगह-जगह काम करता दिखाई पड़ता है।

वैसे अपने इस प्राचीन सभ्यता के देश में, जहां कभी ब्रह्म की जिज्ञासा हुआ करती थी, जिज्ञासा का बड़ा अभाव हो गया है। हम जैसे चीजों को मानकर चलते हैं और यह समझते हैं कि सत्याग्रह का तो यहीं जन्म हुआ, यहीं प्रयोग हुआ और यहीं से वह दुनिया में फैला; तो इसमें और क्या जानना है, वह सब तो हम जानते ही हैं। वह सब तो हमारा जाना-सुना है। जो है नहीं, और अगर है भी तो उस पर समय की गर्त पड़ गई है और अगर उसे देखना हो तो उसे साफ करने की, माँजते रहने की जरूरत है। मुझे काशी में सुने कबीर के एक पद का स्मरण हो आता है। शब्द कुछ इधर उधर होंगे, लेकिन आशय है कि दर्शन चाहिए तो दर्पण माँजा करिए। “ जो दर्पण में लग गई काई तो दरश कहां से होई।” अगर दरश करना है, देखना है तो दर्पण चाहिए। और दर्पण को माँजते रहना चाहिए, अगर दर्पण में ही काई लग गई, मैल जम गया तो फिर दरश कहां से होगा। तो इस सब को माँजते रहने की जरूरत है। गांधीजी के जाने के बाद डाक्टर राम मनोहर लोहिया ने इस अलख को जगाए रखा। और उन्होंने सत्याग्रह के प्रयोग किए। मैं अपने विश्वविद्यालय के दिनों में अनेक विध इन सबसे जुड़ा हुआ था और इनसे गुजर चुका था। और उसके बाद हैदराबाद में रहकर मैनकाइंड नामक अंतरराष्ट्रीय पत्रिका का संपादन कर रहा था। और सिविल नाफरमानी 1960 की होने को थी।

इस अवसर के लिए मैंने अपने मित्रों के साथ यह संकल्प किया कि ‘मैनकाइंड’ का एक विश्व सत्याग्रह विशेषांक निकाला जाय। और उस सिलसिले में मैंने उस समय तक 1960 की दहाई की शुरुआत तक, विश्व में जो अहिंसक सत्याग्रह आन्दोलन चल रहे थे, उनसे प्रत्यक्ष संपर्क साधने की चेष्टा की। उन दिनों यूरोप और अमेरिका में आणविक युद्ध के खतरे को भांप कर उसके प्रतिरोध का एक आंदोलन चल रहा था। यूरोप दो विश्व महायुद्धों से गुजरा था, इसलिए आने वाले युद्ध की आशंका और उसमें भी आणविक हथियारों का यानी अणु बम का प्रयोग हिरोशिमा व नागासाकी में हो चुका था और उसकी विध्वंसलीला के घाव थे। और उसकी एक बहुत भयावह छवि थी। इसलिए आणविक हथियारों के प्रयोग और उनको और मारक बनाने के प्रयत्न महाशक्तियों के द्वारा विशेषकर अमेरिका और रूस के द्वारा जो चल रहे थे, उसके खिलाफ ए. जे. मास्टे और अन्य सक्रिय रूप से प्रतिरोध कर रहे थे। वे उन महासागरों में अपने यान दौड़ाने की चेष्टा करते थे, जहां आणविक विस्फोट के प्रभावों का आकलन होता था या अफ्रीका में। इन सबसे संपर्क कर उनके प्रतिरोध की गाथा को भी मैंने इकट्ठा करने की कोशिश की।

अमेरिका में रंगभेद के खिलाफ आंदोलन का सूत्रपात हो चुका था। अल्बामा में एक अश्वेत महिला ने एक बस में अपनी सीट छोड़कर, जो कि गोरों के लिए आरक्षित थी, अश्वेतों की सीट पर जाने से इन्कार कर दिया था। उत्तरी अमरीका के दक्षिणी भाग में यह एक अनहोनी घटना थी। इसके लिए उन्हें गिरफ्तार किया गया। इस ज्ञानपूर्ण कष्टसहन के द्वारा एक नए आन्दोलन की शुरुआत पचास की दहाई में ही हो चुकी थी। वह आन्दोलन अल्बामा में, मॉंटगोमरी में, मिसिसिपी में और अन्य दक्षिण प्रांतों में जैसे दावानल

की तरह फैल रहा था और उसके एक अत्यंत प्रखर और प्रज्वलित नेता के रूप में मार्टिन लूथर किंग जूनियर उभर रहे थे। उनको भी मैंने इस अंक के लिए लेख लिखने के लिए आमंत्रित किया और उन्होंने इसे स्वीकार भी किया। किन्तु अपनी व्यस्तताओं के कारण उनका लेख तो हमें नहीं मिल सका। किन्तु उनके लोगों ने इसमें सहकार किया। फिर तो उनका वह प्रसिद्ध मार्च हुआ और उनका ओजस्वी उद्बोधन-आह्वान 'आई हैव ए ड्रीम' हुआ।

ऐसे पराक्रमी और प्रखर पुरुष की नियति है, एक क्रूर नियति—उनकी हत्या कर दी गई। किन्तु उनके द्वारा जलाई गई मशाल आज भी प्रज्वलित है और उनका संगठन नेशनल एसोसिएशन फॉर दी एडवांसमेंट ऑफ कलर्ड पीपल्स भी, मैं आशा करता हूँ कि सक्रिय है। इसी प्रकार दुनिया के अन्य भागों में, अफ्रीका के महाद्वीप और देशों में दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के खिलाफ नेल्सन मंडेला रहे, उत्तर पूर्वी भाग में उन दिनों ब्रिटिश और फ्रेंच आधिपत्य में पड़े देशों में घाना, केन्या, जिम्बाब्वे और अन्य खंडों में मूलतः अहिंसक प्रतिकार चल रहे थे। उनमें छिटपुट हिंसा की घटनाएं भी हो जाती थीं। किन्तु उनका आधार अहिंसक प्रतिकार का था। उनसे भी संपर्क कर उनको इसमें शरीक करने की चेष्टा हुई। इस प्रकार वह मैनाकाइंड का विशेषांक वर्ल्ड सत्याग्रह नंबर उस समय तक के विश्वव्यापी अहिंसात्मक प्रतिकार का एक दर्पण है।

इसी के साथ एक विशेषांक चौखंभा का संकलित और संपादित हुआ। वह संकलन भी मुझे करने का योगायोग हुआ और वह सिविल नाफरमानी विशेषांक चौखंभा का प्रायः उसी समय संभवतः मार्च 1960 में प्रकाशित हुआ। चौखंभा के विशेषांक में मैंने एक खंड इतिहास-पुराण में व्यक्तिगत सत्याग्रह का एक लेखा-जोखा लिया, उसके अंतर्गत प्रह्लाद, सुकरात (जो इतिहास के पहले प्रसिद्ध सत्याग्रही हैं) का भी उल्लेख किया। प्रह्लाद तो पुराणकाल के हैं, जिन्होंने अपने पिता हिरण्यकश्यप के

ही अत्याचार के खिलाफ सविनय अवज्ञा की और सुकरात जिन्होंने विष का प्याला पिया; किन्तु जिसे वे सच समझते थे, उसे कहने से वे विरत नहीं हुए, बाज नहीं आए, और विष का प्याला पीकर धीरे-धीरे आती मृत्यु का शिकार हुए। यहाँ से शुरू कर ईसा मसीह और उनके सूली पर चढ़ने का और अपने क्रॉस को खुद ढोने का वृत्तांत भी यहां है। इसके अलावा मीरा जिन्हें गिरधर गोपाल की जब लगन लगी तो वे राणा की परवाह न करते हुए बावरी बनकर फिरती थीं। उनकी जो लगन लगी उसके लिए उन्होंने सब लांछन सहे, फिर भी उसे नहीं छोड़ा। मीरा का भी एक प्रसंग वहां है। फिर हेनरी डेविड थोरो, जिनका प्रसिद्ध निबंध डिसओबिडिएंस, जिसने गांधीजी को भी अपने सत्याग्रह के दिनों में खुराक प्रदान की और मार्टिन लूथर किंग को भी। आज भी उनका वह दस्तावेज जीवित और जाग्रत है, जिन्होंने एक गलत टैक्स को देने से इन्कार कर दिया था। उस इन्कार के कारण उन्होंने एक रात या कुछ रातों जेल में बितायीं। उसी समय उन्हें संभवतः सिविल डिसओबिडिएंस, सिविल नाफरमानी का विचार कौंधा, जो इस लेख में पल्लवित-पुष्पित हुआ।

इसके साथ एक खंड 'गांधी: व्यक्तिगत और सामूहिक सत्याग्रह' का है। इस खंड में एक टिप्पणी के साथ गांधी जी की रचनाओं से एक संकलन किया गया है। यह संकलन दस किताबों की रूह छानकर बना है। इसके पीछे एक दृष्टि है, ज्ञानपूर्ण कष्ट-सहन की एक परंपरा है और उससे जो अनदेखे में देखने की आँख मिलती है, उसे देखकर गांधी जी के विशाल वाङ्मय में से कुछ रत्न हैं, जो यहां संकलित हैं :—

“सत्याग्रह की उत्पत्ति” : “सत्याग्रह” शब्द की उत्पत्ति होने से पहले सत्याग्रह वस्तु की उत्पत्ति हुई है। जिस समय उनकी उत्पत्ति हुई, उस समय तो मैं खुद भी नहीं जान सका कि यह चीज दरअसल क्या है।

“गुजराती में हम उसे 'पैसिव रेजिस्टेंस' (इस अंग्रेजी नाम) से पहचानने लगे, पर

जब गोरों की एक सभा में मैंने देखा कि 'पैसिव रेजिस्टेंस' का संकुचित अर्थ किया जाता है, वह निर्बल का हथियार समझा जाता है, उसमें द्वेष के अस्तित्व की भी संभावना है और उसका अन्तिम रूप हिंसा में परिणत हो सकता है, तब मुझे उस शब्द का विरोध करना पड़ा और भारतीयों के संग्राम का सच्चा रूप लोगों को समझाना पड़ा—और उस समय हिन्दुस्तानियों को अपने संग्राम का परिचय कराने के लिए एक नया शब्द गढ़ने की जरूरत पड़ी।

“परन्तु मुझे इसके लिए कोई स्वतंत्र नाम सूझ नहीं पड़ता था। अतएव उसके नाम के लिए एक ईनाम रखा गया और 'इंडियन ओपिनियन' के पाठकों में एक होड़ शुरू कराई। इसके फलस्वरूप मगनलाल गांधी ने 'सत्+आग्रह = सदाग्रह' शब्द बनाकर भेजा। उन्हें ईनाम मिला, परन्तु सदाग्रह शब्द को अधिक स्पष्ट करने के लिए मैंने बीच में 'य' जोड़ कर सत्याग्रह शब्द बनाया, और फिर इस नाम से यह संग्राम पुकारा जाने लगा।”

“सत्याग्रह, 'पैसिव रेजिस्टेंस', सिविल नाफरमानी, असहयोग” : “सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ है, सत्य का आग्रह। अतः यह सत्य की शक्ति है। सत्य आत्मा है, अतः यह आत्म-शक्ति के रूप में जाना जाता है। इससे हिंसा बरज दी गई है, क्योंकि आदमी अन्तिम सत्य को जानने में असमर्थ है और इसलिए वह दंड देने का अधिकारी नहीं है। सत्याग्रह शब्द औरतों के लिए वोट का हक मांगने वाले तथा अन्य प्रकार के प्रचलित 'पैसिव रेजिस्टेंस' से भिन्न अर्थ प्रगट करने के लिए दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के दिनों में गढ़ा गया। इसकी कल्पना कमजोर दिमाग के हथियार के रूप में नहीं की गई।

'पैसिव रेजिस्टेंस' या निष्क्रिय प्रतिरोध का अंग्रेजी में एक रूढ़ अर्थ में प्रयोग किया जाता है और इसके अन्तर्गत औरतों के वोट के हक के लिए चलाया आन्दोलन और ईसाई धर्म की रूढ़ियों को न मानने वालों के प्रतिरोध

वाले आन्दोलन आते हैं। निष्क्रिय प्रतिरोध की कल्पना कमजोर के हथियार के रूप में की गई है और कर्म में भी ऐसा ही माना जाता है; यह हिंसा को बढ़ाता है क्योंकि कमजोर आदमी के लिए हिंसा सुलभ नहीं है। लेकिन अगर प्रतिरोधक समझे कि अमुक परिस्थिति में हिंसा जरूरी है तो वह हिंसा से विरत न होगा। फिर भी हमेशा सशस्त्र प्रतिरोध से यह भिन्न माना जाता रहा है, और पुराने जमाने में इसका प्रयोग ईसाई शहीदों तक ही सीमित रहा है।

सिविल नाफरमानी अनैतिक कानूनों को सिविल ढंग से भंग करना है। जहां तक मेरी जानकारी है, यह शब्द थोरो ने गुलामी कायम रखने वाली सरकार से अपना प्रतिरोध व्यक्त करने के लिए गढ़ा। उसने सिविल नाफरमानी के कर्तव्य पर बहुत बढ़िया निबन्ध लिखा है। लेकिन थोरो शायद पूरी तौर पर अहिंसा का हामी नहीं था। और शायद थोरो ने अपना कानून भंग राजस्व कानून तक ही सीमित रखा, कर न देने तक; जब कि 1919 में सिविल नाफरमानी का प्रयोग हर तरह के अनैतिक कानून को तोड़ने में हुआ। सत्याग्रही ने सिविल यानि अहिंसक तरीके से कानून भंग किया। उसने कानून तोड़ा और इसके लिए सहर्ष जेल काटी। यह सत्याग्रह की एक शाखा है।

“असहयोग मुख्यतः उस राज को सहयोग न देना है जो असहयोगी की नजर में भ्रष्ट हो गया है। इसमें ऊपर लिखी प्रखर प्रकार की सिविल नाफरमानी शामिल नहीं है। असहयोग तो मूलतः ऐसा है कि समझदार बच्चा भी इसका प्रयोग कर सकता है और आम जनता भी इसका बेखटके इस्तेमाल कर सकती है। सिविल नाफरमानी में बिना दंड के भय के कानून का आदर निहित है। इसलिए इसका इस्तेमाल अन्तिम शस्त्र के रूप में किया जा सकता है; और हर हालत में पहले-पहल तो कुछ चुने गए लोगों द्वारा ही। सिविल नाफरमानी की तरह ही असहयोग सत्याग्रह की एक शाखा है, जिसमें सत्य के लिए अहिंसक प्रतिकार शामिल है।” सत्याग्रह, पृष्ठ 3-4, अंग्रेजी से अनूदित

...शेष अगले अंक में

विश्व में अहिंसा के प्रतीक : गांधीजी

□ अनीता शर्मा

गांधीजी जैसी अद्भुत प्रतिभा का अवतरण हम सभी के लिए प्रेरणा का विषय है। सत्य और अहिंसा के बल पर अंग्रेजों से भारत को स्वतंत्र करा के हम सभी को स्वतंत्र भारत का अनमोल उपहार देने वाले महापुरुष गांधीजी को राष्ट्र ने राष्ट्रपिता के रूप में स्वीकार किया।

भारत ही नहीं, वरन् पूरे विश्वपटल पर महात्मा गांधी सिर्फ एक नाम नहीं, अपितु शांति और अहिंसा का प्रतीक हैं। महात्मा गांधी के पूर्व भी शांति और अहिंसा की अवधारणा फलित थी, परन्तु उन्होंने जिस प्रकार सत्याग्रह, शांति व अहिंसा के रास्तों पर चलते हुए अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर मजबूर किया, उसका कोई दूसरा उदाहरण विश्व इतिहास में देखने को नहीं मिलता। तभी तो प्रख्यात वैज्ञानिक आइंस्टीन ने कहा था कि, “हजार साल बाद आने वाली नस्लें इस बात पर मुश्किल से विश्वास करेंगी कि हाड़-मांस से बना ऐसा कोई इनसान धरती पर कभी आया था।”

संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी वर्ष 2007 से गांधी जयंती को ‘विश्व अहिंसा दिवस’ के रूप में मनाये जाने की घोषणा की। आज हम गांधीजी की उस उपलब्धि का जिक्र करने का प्रयास कर रहे हैं जो हम सभी के लिए गर्व का विषय है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी अहिंसा के बूते आजादी दिलाने में भले ही भारत के नायक हैं, लेकिन डाक टिकटों के मामले में वह विश्व के 104 देशों में सबसे बड़े नायक हैं। विश्व में अकेले गांधी ही ऐसे लोकप्रिय नेता हैं जिन पर इतने अधिक डाक टिकट जारी होना एक रिकार्ड है। डाक टिकटों की दुनिया में गांधीजी सबसे ज्यादा दिखने वाले भारतीय हैं तथा भारत में सर्वाधिक बार डाक-टिकटों पर स्थान पाने वालों में गांधीजी प्रथम हैं। यहां तक कि आजाद भारत में वे प्रथम व्यक्ति थे, जिनपर डाक टिकट जारी हुआ। एक दिलचस्प बात यह थी कि जिन्दगी भर ‘स्वदेशी’ को तवज्जो देने वाले गांधीजी को

सम्मानित करने के लिए जारी किये गये पहले डाक टिकटों की छपाई स्विट्जरलैंड में हुई थी। इसके बाद आज तक किसी भी भारतीय डाक टिकट की छपाई विदेश में नहीं हुई।

गांधीजी की शिखिसयत का ही असर था कि भारत को गुलामी के शिकंजे में कसने वाले ब्रिटेन ने जब पहली दफा किसी महापुरुष पर डाक टिकट निकाला तो वह महात्मा गांधी ही थे। इससे पहले ब्रिटेन में डाक टिकट पर केवल राजा या रानी के ही चित्र छापे जाते थे।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी पर सर्वाधिक डाक टिकट उनके जन्म शताब्दी वर्ष 1969 में जारी हुए थे। उस वर्ष विश्व के 35 देशों ने उन पर 70 से अधिक डाक टिकट जारी किये थे।

गांधीजी ने सत्य को अपने जीवन में बचपन से ही अपनाया था। सत्य को परिलक्षित करती उनकी एक बचपन की घटना याद आती है जब टीचर के कहने के बावजूद भी उन्होंने नकल नहीं की। किस्सा यूं है कि एक बार राजकोट के अल्फ्रेड हाईस्कूल में तत्कालीन शिक्षा विभाग के इंस्पेक्टर ‘जाइल्स’ मुआयना करने आये थे। उन्होंने नवीं कक्षा के विद्यार्थियों को अंग्रेजी के पांच शब्द लिखने को दिये, जिसमें से एक शब्द था ‘केटल’; मोहनदास इसे ठीक से नहीं लिख सके तो मास्टर साहब ने इशारा किया कि आगे वाले लड़के की नकल कर लो, किन्तु मोहनदास ने ऐसा नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि सिर्फ उनके ही लेख में गलती निकली। सभी के पांचों शब्द सही थे। जब मास्टर साहब ने पूछा कि तुमने नकल क्यों नहीं की, तो मोहनदास ने दृढ़ता से उत्तर दिया कि “ऐसा करना धोखा देने और चोरी करने जैसा है जो मैं हर्गिज नहीं कर सकता।” यह घटना इस बात का प्रमाण है कि गांधीजी बचपन से ही सत्य के अनुयायी थे। राजा हरिश्चन्द्र और श्रवण कुमार का असर उन पर बचपन से ही था। ऐसे सत्य और अहिंसा के पुजारी को नमन! □

गुजरात और बिहार के नरसंहार

□ बाबूराव चन्दावार

राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त भारत ने संसदीय लोकतंत्र का स्वीकार किया, वह स्वाभाविक प्रक्रिया थी। संसदीय लोकतंत्र का जो स्वरूप अब तक उभरा है, वह भी स्वाभाविक प्रक्रिया में ही गिना जाना चाहिए। क्योंकि इस स्वरूप में जो अंतर्विरोध दिखायी देते हैं, वे भी संसदीय लोकतंत्र के स्वाभाविक परिणामों के ही मानने होंगे। अंतर्विरोधों को जो स्वाभाविक परिणाम नहीं मानते हैं, उन्होंने संसदीय लोकतंत्र के प्रति जो अपनी समझ बना रखी है, उसे स्वाभाविक नहीं माना जा सकता। संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्विरोध भी उभरकर आ सकते हैं। इसे लोकतंत्र में मानने वालों द्वारा नहीं माना जा रहा है! लोकतांत्रिक संसदीय व्यवस्था कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है जिसे संपूर्णतः निर्दोष मान लिया जा सकता हो। क्योंकि संसदीय लोकतंत्र की कार्यप्रणाली कहीं भी बहुमत की बुनियाद पर ही निर्मित हुआ करती है। भारत में भी वह बहुमत की बुनियाद पर ही निर्मित हुई है। बहुमत अपने में निर्दोष नहीं होता है। अल्पमत पर वर्चस्व स्थापित करके ही अपना अस्तित्व बनाता है। इसलिए लोकतंत्र में निहित बहुमत अल्पमत पर विजय प्राप्त करके ही अपने वर्चस्व को स्थापित करता है। 'बहुमत का वर्चस्व' लोकतांत्रिक भूमिका में हर क्षण प्रदूषित होता रहता है, जिसमें से लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्विरोध स्पष्ट हुआ करते हैं, उसे उभरने के लिए अवसर प्रदान किए जाते हैं। लोकतंत्र में उसके अपने अंतर्विरोधों को उभरने के लिए स्वभावतः अवसर बनते ही हैं, जिन्हें मानकर या स्वीकृत करके इन अंतर्विरोधों का यथोचित आकलन जरूरी हो जाता है। इसे टाला नहीं जा सकता, टाला गया तो उसमें निहित अंतर्विरोधों को

अनदेखा कर दिया जाता है, क्योंकि उसमें से निकल आनेवाले दुष्परिणाम टल नहीं पाते हैं। इस नहीं टल पाने की स्थिति में ही लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत जो घटनाएँ होती रहती हैं, दुर्घटना में परिवर्तित हो जाया करती हैं। इसकी प्रक्रिया से जो बीभत्स स्वरूप उभरकर सामने आने लगा है, उस संदर्भ में गुजरात राज्य तथा बिहार राज्य की इधर जो घटनाएँ घटी हैं, उन्हें जानना-समझना होगा। इन घटनाओं ने संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्विरोधों को जिस तरह से उभरकर आने के लिए विवश कर दिया है, उसका चरित्र संसदीय लोकतंत्र पर प्रहार करनेवाला ही साबित होता है। इससे स्पष्ट है कि संसदीय लोकतंत्र मानवीयता की मर्यादाओं का उल्लंघन करने वाला ही बनकर रह जाता है! इसके प्रमाण प्रसंगवश मिलते रहते हैं। गुजरात तथा बिहार से जो प्रमाण मिले हैं वे संसदीय लोकतंत्र के भविष्य पर प्रश्नचिह्न लगाने वाले ही हो गए हैं।....

1. सामंतशाही का दुष्प्रभाव : गुजरात में हुए 2002 के दंगों में अल्पसंख्यक मुस्लिम समुदाय के दो हजार लोगों की शासन-प्रशासन द्वारा हत्या कर दी गई। भाजपा शासित गुजरात शासन द्वारा हत्याओं की दो हजार की संख्या को अधिकृत नहीं किया गया है। एक हजार की संख्या को ही अधिकृत किया गया है। अन्य कई सर्वेक्षण किए गए हैं जिनमें दो हजार मुस्लिमों की हत्या की गयी कहा गया है। शासन करने वाले अपने बचाव में जो तर्क प्रस्तुत करते हैं, उसका मात्र एक तकनीकी ही महत्त्व होता है। उससे वास्तविकता स्पष्ट नहीं होती है। गुजरात-शासन द्वारा एक हजार की हत्याओं को मान लेने से भी की गयी हत्याओं का समर्थन नहीं होता है। लेखक

आशीष नंदी का 2002 के अंग्रेजी 'सेमिनार' पत्रिका में जो आलेख प्रकाशित हुआ था, उसका निष्कर्ष 'टेक्स्टबुक केस ऑफ फासिज्म' निकाला गया है। इसी तरह बिहार राज्य में 'लक्ष्मणपुर बाथे' सहित अन्य कई नर संहारों को भी देखना-समझना होगा। क्योंकि ग्रामीण बिहार में प्रमुखता से सामंतशाही द्वारा नरसंहारों के लिए प्रेरित किया जाता रहा है। जो बिहार को जानते हैं उन्हें इसमें संदेह नहीं हो सकता! इसके पूर्व बिहार में जितने भी नरसंहार हुए हैं, उनमें से बेइछी हत्याकांड के साथ ही कुछ नरसंहारों की रपटें जे. पी. के लिए स्वयं मैंने बनायी थीं। प्रायः बिहार में सामंतशाही के दुष्प्रभाव से ही नरसंहार हुआ करते हैं, इसे कहने में संकोच नहीं किया जा सकता है।

गुजरात में अल्पसंख्यक मुस्लिमों की शासकों द्वारा प्रेरित हत्याएं तथा बिहार में सामंतशाही द्वारा प्रेरित सभी नरसंहारों में भिन्न संदर्भ होते हुए भी संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में उभरकर आनेवाले अंतर्विरोधों के परिप्रेक्ष्य में ही इन्हें देखना होगा तथा समझना भी होगा। गुजरात तथा बिहार में भारतीय संविधान द्वारा निर्मित लोकतांत्रिक व्यवस्था है, जिसकी प्रभावहीन अवस्था के कारण से ही नरसंहार हो गये हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था का निर्माण चुनाव में बहुमत प्राप्त करके ही किया जाता है। गुजरात तथा बिहार में भी बहुमत द्वारा ही लोकतांत्रिक व्यवस्था का निर्माण भी किया गया है! बड़ी संख्या में हत्याएँ एवं नरसंहार जब हुआ करते हैं, तब उसकी जड़ में लोकतांत्रिक व्यवस्था के चरित्र का निर्वहन जिस तरह से होना चाहिए, वह नहीं होने के कारण से ही यदि हत्याएं एवं नरसंहार होते हैं, तो उसका मुक्त मन एवं खुलकर

लोकतांत्रिक हित को ध्यान में रखते हुए अवलोकन कर लेना जरूरी हो जाता है!

2. अंतर्विरोध के महत्वपूर्ण बिन्दु : बहुमत को ही आधार बनाकर लोकतांत्रिक व्यवस्था का निर्माण किया जाता है। चुनाव द्वारा जो बहुमत प्राप्त करते हैं, वे शासन करनेवाले बन जाते हैं। इसमें अल्पमत का स्थान एवं महत्व नहीं माना जाता है। इसलिए अल्पमत में असंतोष उभरना स्वाभाविक हो जाता है। बहुमत की संतुष्टि एवं अल्पमत की असंतुष्टि इनकी दो धाराएं बनती हैं, जिनमें समय-समय पर अवसर मिल जाने से टकराव-संघर्ष होते रहना स्वाभाविक हो जाता है। इस टकराव-संघर्ष में ही संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए क्षति पहुंचाने के अवसर बनते रहते हैं। इन अवसरों द्वारा ही हत्याएं एवं नरसंहार के लिए उकसाते रहने के प्रसंग उपस्थित होते हैं। इसलिए लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनैतिक सत्ता का उपभोग करते रहने की लालसा पनपती है तथा वह दुष्परिणामकारी बनती है। इसीमें से प्रतिशोध की भावना को बल मिलता जाता है और प्रतिशोध की भावना से ही हत्याएं एवं नरसंहार की घटनाएं होती रहती हैं। गुजरात में प्रतिशोध का स्वरूप धर्म-संप्रदायों के अनुशासनात्मक सांप्रदायिक रवैयों का रुख बन गया, जो प्रतियोगी धर्म-संप्रदायों को हानि पहुंचाने के लिए प्रवृत्त हो गया, जिससे हत्याओं का सिलसिला स्वाभाविक हो गया। शासन करने वाले संवैधानिक दायित्व को भुलाकर धर्म-संप्रदायों के अनुशासन का दायित्व निभाने वाले बन गए, जिससे संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में धर्म-संप्रदायों का अनुशासन संवैधानिक दायित्व पर हावी है, तथा कानून एवं व्यवस्था को बनाए रखने के लिए संवैधानिक दायित्व को निभा पाना संभव नहीं हो रहा है! धर्म-संप्रदायों का अनुशासन, जिसका संवैधानिक आधार एवं महत्व लोकतांत्रिक व्यवस्था में है, वह जब

संवैधानिक दायित्व पर हावी हो जाता है, उसमें से हत्याओं का दौर स्वाभाविक हो जाता है। संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में अंतर्विरोध उभरकर आते हैं जिनका एक महत्वपूर्ण बिंदु संवैधानिक दायित्व को नहीं मानकर धर्म-संप्रदायों के अनुशासन को ही मानते हुए उसीका दायित्व निभाते रहना महत्वपूर्ण हो जाता है।

इस अंतर्विरोध के महत्वपूर्ण बिंदु पर नहीं सोचने की मानसिकता भारत की दलगत राजनीति की बन गई है, जिसे अलोकतांत्रिक ही माना जा सकता है। गुजरात में की गयी हत्याओं पर सोचने की आवश्यकता थी, पर सोचा नहीं गया।

3. सामंतशाही की अस्तित्व-रक्षा करने वाली राजनीति : बिहार में जो नरसंहार हुए हैं, उनका मुख्य कारण वहां का सामंतवाद है। सामंतवाद के प्रति दलगत राजनीति का कोई स्पष्ट दृष्टिकोण अब तक नहीं बन पाया है। देश की राजनीति पर सामंतशाही का प्रभाव हमेशा से ही रहा है, जो अब अनियंत्रित होकर ही अपना अस्तित्व बनाये हुए है। बिहार में सामंतवाद की गतिविधियों के चलते जो नरसंहार संगठित हुआ है, वह भारत के अन्य राज्यों में कुछ कम मात्रा में दिखायी देता है। इसका प्रमुख कारण बिहार की विषम भूमि व्यवस्था है। पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश, झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़, आंध्र तक प्रकारांतर से एक जैसी स्थिति देखी जाती है। सामंतशाही की जड़ विषम भूमि व्यवस्था के कारण जमींदार-भूमिपति, भूमिहीन खेतीहर मजदूर की विषम अवस्था लोकजीवन में गहराई तक पहुंचाई गई है, जिसके चलते शोषण की प्रक्रिया चलती रही है। बिहार में समय समय पर इसका अमानवीय घृणित स्वरूप उभरकर आता ही रहता है। इसकी एक परंपरा बनी हुई है। बिहार का लोकजीवन इससे प्रभावित

होता रहा है। क्योंकि बिहार की राजनीति ने इसे अपना राजनैतिक स्वार्थ साध लेने का एक कारगर साधन बना लिया है। कहना होगा कि बिहार के नरसंहार राजनीति प्रेरित ही है। 'लक्ष्मणपुर बाथे' नरसंहार के बाद तत्कालीन राबड़ी देवी शासन ने पटना उच्च न्यायालय के न्यायाधीश न्यायमूर्ति अमीर दास के नेतृत्व में एक जांच आयोग का गठन किया था, जिसे मौजूदा मुख्यमंत्री ने 2005 में सत्ता संभालने के छः महीने के अंदर ही भंग कर दिया। अपने साक्षात्कार में न्यायमूर्ति अमीर दास ने कहा है कि "सरकार ने यह भी जानने की कोशिश नहीं की कि आयोग ने कितनी मुश्किलों में काम किया, किस तरह तथ्यों को जुटाया और घटनाक्रम की तह तक पहुंचने के लिए कितनी मेहनत की। नीतीश कुमार सरकार के गठन के 15-20 दिनों के अंदर ही मेरे ऊपर इस बात का दबाव पड़ने लगा कि मैं अपनी रिपोर्ट जमा करूँ। मैंने थोड़ा और समय मांगा लेकिन कहा गया कि पहले ही देर हो चुकी है। उन लोगों ने अचानक आयोग को भंग कर दिया। हमने 6-8 वर्षों तक कड़ी मेहनत की थी वह बर्बाद हो गयी। जो हत्याकांडों में शामिल थे उनमें से कई अब विधायक बन गए हैं। जो लोग आज सरकार में हैं उनमें से कई उस हत्याकांड में शामिल थे।" ('समकालीन तीसरी दुनिया' मासिक पत्रिका, नवंबर, 2013 से साभार)

अमीर दास आयोग को समाप्त कर दिया गया; क्योंकि 'लक्ष्मणपुर बाथे' नरसंहार का सीधा संबंध राजनैतिक नेताओं के साथ था। सामंतशाही के धुरंधरों ने 'रणवीर सेना' जैसी कई निजी सेनाओं का गठन बिहार में किया है, जिन्हें बिहार शासन-प्रशासन का संरक्षण मिलता रहा है। बिहार में सामंतशाही का पोषण होता रहे, इस उद्देश्य से ही यह संरक्षण दिया भी गया है। बिहार में 'नरसंहार की

राजनीति' होती है। इसके लिए जातिगत निजी सेनाओं का निर्माण बिहार में किया भी गया है। कुर्मी जाति की 'भूमिसेना', यादव जाति की 'लोरिक सेना', राजपूतों की 'कुंवर सेना', सवर्णों का 'लिबरेशन फ्रंट' 'डायमंड सेना' आदि प्रमुख सेनाएं हैं, जिनमें से मात्र भूमिहार जाति की 'रणवीर सेना' की चर्चा अब तक अधिक मात्रा में हुई है। सभी राजनैतिक दल इसमें शामिल हुए हैं, और उनकी राजनीति लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत जो अंतर्द्वन्द्व मौजूद है, उनके उभरते रहने के लिए इनकी गतिविधियां तथा सक्रियता सहायक होती रही हैं।

4. लोकतांत्रिक व्यवस्था के प्रयोजन की संदिग्धता : न्यायिक जांच आदि अवश्य किए जाते रहे हैं। उस पर राजनीतियों का ही दबाव रहता भी है, इसलिए बिहार में न्यायिक जांच या न्यायिक आयोग का कोई महत्व नहीं है। मुख्यमंत्री नीतीशकुमार ने ही डी.बंदोपाध्याय की अध्यक्षता में 2007 में भूमिसुधार आयोग गठित किया था। उसकी रपट बनी हुई है। भूदान बेदखली के प्रश्न पर बंदोपाध्याय आयोग ने बिहार शासन को इस रपट में दोषी ठहराया है। उस पर कोई उचित कार्यवाही अब तक बिहार शासन द्वारा नहीं की गई है। हमारे गांधीजन-सर्वोदयी भी निष्प्रभ रहे तथा बेदखल भूदान किसानों की समस्या जैसी थी वैसी ही बनी रही है। (इस पर 26 जून 2010 से पटना में सप्ताह से अधिक समय का अनशन मेरा हुआ था) न्यायिक जांच द्वारा शासन करने वाले मात्र एक औपचारिकता निभाते आये हैं। गुजरात का हत्याकांड हो या बिहार का नरसंहार, न्याय स्थापना की दृष्टि से वह हमेशा लोकद्रोही रहा है। संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में न्याय-प्रणाली का महत्व भारत के संविधान द्वारा अवश्य बनाया गया है। न्याय-प्रणाली में न्याय स्थापित करने का प्रश्न बना हुआ है। न्याय-प्रणाली पर भी राजनीति का दबाव राजनीति

करनेवाले सभी राजनैतिक दल अपने बल प्रदर्शन द्वारा बना कर रखते हैं। यह अनुभव जिस तरह गुजरात के संदर्भ में आता है, उसी तरह बिहार के संदर्भ में भी आया है। अतः न्याय-प्रणाली को निष्पक्ष एवं स्वतंत्र रख पाना, उसे राजनैतिक दबाव से मुक्त रख पाना क्या कभी संभव हो पाएगा?

बालिग मतदान प्रक्रिया का अनुसरण करके ही बहुमत द्वारा संसदीय व्यवस्था शासन करने वालों को चुना करती है। उसे लोकतांत्रिक व्यवस्था की योग्यता एवं महत्व प्राप्त होता है। वह स्वाधीनता का आश्वासन लोगों को देगी, ऐसा माना भी गया है। इस मान्यता का कोई ठोस आधार नहीं दिखाई देता है।

5. स्टेट टेररिज्म : बुनियादी चिंतन के वह बिंदु सर्वप्रथम तलाशने होंगे, जो स्वाधीनता के लिए आस्थामूलक माने जा सकते हैं। विनोबाजी ने संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था को इतना औपचारिक माना है कि उन्होंने अंग्रेजी में, लोकतंत्र को 'डेमॉक्रेसी' शब्द है उसके लिए 'डिमोनैक्रेसी' प्रतिशब्द गढ़ा है। इसका मतलब है दुष्ट राक्षसों का शास्त्र या पिशाचशास्त्र। विनोबाजी की दृष्टि में लोकतंत्र दुष्ट राक्षसों का या पिशाचों का शास्त्र हो गया है। जे. पी. ने लोकतांत्रिक व्यवस्था को 'उलटा पिरामिड' कहा है। पिरामिड बुनियाद में चौड़ा होता है। ऊपर जाकर उसकी चौड़ाई कम होकर वह नुकीला-नोकदार बन जाता है। संसदीय लोकतांत्रिक व्यवस्था बिना बुनियाद के नुकीले बिंदु पर रखी गई है जो कभी भी लुढ़ककर गिर सकती है।

गुजरात की हत्याएं हों या बिहार का नरसंहार, वह सब संसदीय लोकतंत्र में अंतर्द्वन्द्व का ही दुष्परिणाम माना जाना चाहिए। इसकी झलक 1976-77 के आपातकाल में दिखाई पड़ी थी। आपातकाल में ही तानाशाही की दिशा लेने की कोशिश संसदीय लोकतांत्रिक औपचारिकता द्वारा की गई थी जिसे सफलता नहीं मिली। स्वाधीनता का असरकारी तथा

प्रभावी जनजागरण जे. पी. का नेतृत्व एवं मार्गदर्शन देश में उपलब्ध था। बहुमत वाला लोकतंत्र 'आपातकाल' तानाशाही में बदल दिया गया था। जे. पी. के नेतृत्व के कारण देश को आपातकाल से बचाना संभव हो पाया।

हमें संसदीय लोकतंत्र का प्रभावशाली विकल्प प्रस्तुत करना होगा, अन्यथा संसदीय लोकतंत्र की बहुमत वाली बुनियाद कभी भी राक्षसी बहुमत में बदल सकती है। देश की राजनैतिक गतिविधियां लोगों को स्वाधीनता में जीने के अवसर प्रदान करने के लिए संकल्पबद्ध एवं प्रयोजनकारी नहीं रह गयी हैं। राजनैतिक गतिविधियां राजनैतिक सत्ता पाने के लिए प्रतिस्पर्द्धा एवं प्रतियोगिता में उलझकर रह जाती हैं! गुजरात में शासन करने वालों ने ही तो लोगों की हत्याएं कीं। शासन द्वारा उन्हें पुरस्कृत किया गया। आतंकवाद का स्टेट टेररिज्म परिणाम माना भी गया है। बिहार में नरसंहार की घटनाएं भी आगे राज्य के आतंकवाद की शकल-सूरत ले ही सकती हैं! संसदीय लोकतंत्र का स्वरूप शासनक्षमता द्वारा राज्य के आतंक में ही बदल रहा हो, तो आश्चर्यजनक नहीं मानना चाहिए।

इसका एकमात्र उपाय, स्वाधीनता के अनुरूप उसकी सुरक्षा हो। और प्रभावी लोकशक्ति द्वारा एक विकल्प प्रस्तुत करना जरूरी हो गया है। संसदीय लोकतंत्र के प्रति अकारण तथा बेबुनियादी आस्था को तो अंध आस्था ही कहा जा सकता है। □

सूचना

सर्वोदय जगत के पिछले अंक 10 (1-15 जनवरी, 2014) में श्री सुरेश भाई का आलेख 'समग्र एवं मजबूत हिमालय-लोकनीति' प्रकाशित किया गया था, जिसका शेष इसी अंक में प्रकाशित होना था। स्थानाभाव के कारण इस आलेख को अगले अंक में प्रकाशित किया जायेगा। पाठकों को हुई असुविधा के लिए खेद है। -सं.

वर्षा तो हर साल होती ही है। पूरे देश में। कहीं कम, कहीं ज्यादा, कहीं बहुत ज्यादा भी। पर इन विभिन्न जगहों में रहने वाले समाज ने अपने वर्षों के अनुभव से इस कम-ज्यादा के साथ अपना जीवन कैसे ढालना है—यह ठीक से सीख लिया है।

एक तरफ तो जैसलमेर, जहां वर्षा का आंकड़ा इंचों में बात करें तो वर्ष भर में 6 इंच के ऊपर नहीं जाता, तो दूसरी तरफ हमने देखा कि बिहार के छपरा में मात्र एक दिन में 36 इंच वर्षा हो गयी थी। फिर उत्तर-पूर्व में हमारे एक प्रदेश का तो नाम ही मेघों का घर रखा गया है। इन सभी जगह के समाजों ने पीढ़ियों के अनुभव से, अपने आसपास के मौसम, धरती, हवा, पेड़, पौधे और वहां के पशुओं तक के साथ आत्मीय संबंध बना लिये थे।

आज हम देखते हैं कि जल-नीतियां बनायी जाने लगी हैं। पहले ऐसा नहीं होता था। समाज अपना एक जलदर्शन बनाता था और उसे कागज पर न छापकर लोगों के मन में उकेर देता था। समाज के सदस्य उसे अपने जीवन की रीत बना लेते थे। फिर यह रीत आसानी से टूटती नहीं थी। जल-नीतियां आती-जाती सरकारों के साथ बनती-बिगड़ती रहती हैं। पर जलदर्शन बदलता नहीं। इसी रीत से उस क्षेत्र विशेष की फसलें किसान समाज तय कर लेता था। सिंचाई के लिए अपने साधन जुटा लेता था।

अभी हमने जैसा बिहार के संदर्भ में देखा कि अंग्रेजों ने बिना उस इलाके को समझे रेल की पटरियां खूब ऊंची उठाकर बिछा दीं और गंगा एवं अन्य नदियों के विशाल मैदान को जगह-जगह रोक लिया। उस बड़े भू-भाग में पानी की बेरोकटोक आवक-जावक के लिए उन्होंने समुचित प्रबंध सोचा

तक नहीं, उसे करने की बात तो कौन कहे। रेल लाइन में कितने अंतर पर बड़ी-बड़ी पुलिया चाहिए—इस पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया, कम खर्च में ज्यादा मुनाफा खींच लेने का काम किया और बाद में पता चला कि यह तो उनकी अपनी भाषा, अंग्रेजी की कहावत की तरह परिणाम दे रहा है। कहावत है—पैनी वाइज, पाउंड फुलिश—पैसा बचाने में होशियारी की, पर रुपया गंवा बैठे।

देश ने कई मामलों में खूब उन्नति की है, इसमें शक नहीं; लेकिन बेशक इतना तो जोड़ना ही पड़ेगा कि इसी दौर में देश में सबसे सस्ती कार बिकने आयी थी और सबसे मँहगी दाल भी; तथा देश के आधे भाग में भयानक अकाल भी पड़ा था। पानी तो गिरता ही है, कभी कम कभी ज्यादा। औसत का एक आंकड़ा हम पिछले सौ-पचास साल से भले ही रखने लगे हों—यह बहुत काम नहीं आता। गणित के दम पर, आंकड़ों के दम पर जीवन नहीं चल पाता।

आधुनिक बांधों से भी अकाल दूर हो गये हों—आज भी ऐसा पक्के तौर पर नहीं कह सकते। पंजाब, हरियाणा में, देश के अन्य भागों में, महाराष्ट्र में भयानक अकाल पड़ा था। हमारे कृषिमंत्री इसी प्रदेश से हैं और उन्होंने ही अपने एक बयान में कहा था कि उन्होंने अपने जीवन में महाराष्ट्र में ऐसा भयानक अकाल पहले कभी देखा नहीं था। इसलिए बड़े बांधों से बँध जाना ठीक नहीं है। उन बांधों में भी पानी तो तभी भरेगा, जब ठीक वर्षा होगी।

पर प्रकृति ठीक नहीं, ठीक-ठाक वर्षा करती है। वह मां है हमारी, लेकिन मदर डेयरी की मशीन नहीं कि जितने टोकन डालो, ठीक उतना ही पानी गिरा देगी। एक तरफ हम बड़े बांधों से बँध-से गये और दूसरी

तरफ नई तकनीक ने भू-जल को बाहर उलीच लेने के नये साधन खोज निकाले। शहरों, गांवों में छलनी की तरह छेद कर डाले हमने, और सचमुच मिट्टी की विशाल गुल्लक में पड़ी इस विशाल जलराशि को ऊपर खींच निकाला। उसमें डाला कुछ नहीं। इस तरह यह धरती की गुल्लक खाली हो चली है। भू-जल भंडार में आयी गिरावट को बताने के लिए यों तो जिलावार, प्रदेशवार आंकड़े भी दिये जा सकते हैं, पर जब जीवन का प्राणदायी रस ही निचुड़ता जा रहा हो तो नीरस आंकड़े नया और क्या बता पाएंगे। फिर भी बिना किसी कटुता के यह तो कहा ही जा सकता है कि इस दौर में हमारी राजनीति ज्यादा गिरी है कि भू-जल—यह तय कर पाना कठिन है। इन दोनों का स्तर ऊपर उठाने के लिए हमें खुद ऊपर उठना होगा। पिछले कुछ समय से एक नया शब्द हमारे बीच आया है—जन-भागीदारी। जैसे अकसर होता है ऐसे नये शब्द पहले अंग्रेजी में आते हैं, फिर हम बिना ज्यादा सोचे-समझे उनका अपनी भाषा में अनुवाद कर लेते हैं। पर जब यह शब्द नहीं था, यह नकली शब्द नहीं था, तब हमारे समाज में पानी के मामले में गजब की भागीदारी थी। उस जन-भागीदारी में सचमुच तीन भूमिकाएं होती थीं। लोग खुद अपने गांव में, शहर में पानी की योजना बनाते थे। यह हुई पहली भूमिका। फिर उस योजना को अमल में उतारते थे, तालाब, नहर, कुएं आदि बनाते थे। यह थी दूसरी भूमिका। और तीसरी भूमिका में इन बन चुकी योजनाओं के रख-रखाव की जिम्मेदारी भी स्वयं ही उठाते थे। वह भी कोई दो-चार बरस के लिए नहीं, बल्कि दो-चार पीढ़ी तक उसका रख-रखाव करते थे; उसे अपना काम मानकर करते थे। ऐसे में कहीं-कहीं

समाज राज की भागीदारी भी कबूल कर लेता था। एक तरह से देखा जाये तो राज और समाज परस्पर तालमेल बिठाकर इन कामों को बड़ी सहजता से संपन्न कर लेते थे। आज बहुत ही कम लोगों को इस बात का कुछ अंदाज बचा हो कि हमारे कुछ नामों के, परिवारों के नामों के चिह्न इन्हीं कामों में से निकले थे। नहर की देख-रेख वाले नेहरू थे, तो पहाड़ों में सिंचाई का ढांचा एक तरह की पहाड़ी नहर, कूल बनाने वाले कोहली थे तो गूल बनाने वाले गुलाटी थे। देश में इस कोने से उस कोने तक ऐसी अनेक जातियां, अनेक लोग थे, जो गांवों और शहरों के लिए पानी का काम करते थे। इसमें अकाल और बाढ़ की मार को कम करने का काम भी शामिल था। और यह सब वे सचमुच अपने तन, मन और धन से करते थे।

जो काम अनेक मनो में उतर गया था, उसे वे अपने तन पर भी सँजोकर रखते थे। देश के सभी भागों में शरीर पर गुदना गोदवाने की एक बड़ी परंपरा रही है। इसमें शुभ चिह्न आदि तो चलन में थे ही, पर देश के कुछ भागों में एक विशेष चिह्न भी पाया जाता था। इसका नाम था—सीता बावड़ी। सीधी-सादी आठ-दस रेखाओं से एक भव्य चित्र कलाई पर किसी भी मेले-ठेले में देखते ही देखते गोद दिया जाता था। इस तरह पानी का काम मन से तन पर और तन से, श्रम से उतरता जाता था जमीन पर।

लेकिन आज जमीन की कीमतें आसमान छूने लगी हैं। शहरों में भी और अनेक गांवों में भी तालाब एक के बाद एक पुरते जा रहे हैं, कचरे से पटते जा रहे हैं। जल-संकट सामने है, पर हम उसे पीठ दे रहे हैं। अपने तालाबों को, अपने जल-स्रोतों को नष्ट कर देने के बाद ऐसे प्यासे शहरों के लिए दूर से, बहुत दूर से किसी और का हक छीनकर बड़ी खर्चीली योजनाओं को बनाकर पानी लाया जा रहा है।

पर हमें एक बात भूलनी नहीं चाहिए। इन्द्र देवता से इन शहरों ने ऐसी अपील तो की नहीं है कि हमारा पीने का पानी तो अब सौ, दो सौ किलोमीटर दूर से आ रहा है; आप हम पर पानी न बरसाएं! पहले ये तालाब ही वर्षा के दिनों में शहरों पर गिरने वाले पानी को अपने में सँजोकर, समेट कर इन शहरों को बाढ़ से बचा लेते थे। इंद्र का एक पुराना नाम, विशेषण है पुरंदर। पुरंदर यानी जो पुरों को, किलों को, शहरों को तोड़ देता है। इस नाम को रखा गया है, तो इसका अर्थ यह भी है कि इंद्र के समय में भी शहर नियोजन की कमियां होती थीं। और ऐसे अव्यवस्थित शहरों को इंद्र अपनी वर्षा के प्रहार से ढहा देता था, बहा देता था।

दिल्ली, मुंबई, चेन्नई, बंगलूरु, जयपुर, हैदराबाद जैसे नये-पुराने, मँहगे हो चले, आधुनिक हो चले, सभी शहर बारी-बारी से ऐसी बाढ़ की चपेट में आ रहे हैं, जैसी बाढ़ उन जगहों में पहले कभी नहीं आती थी।

हमारे देश की समुद्रतटीय रेखा बहुत बड़ी है। पश्चिम में गुजरात के कच्छ से लेकर नीचे कन्याकुमारी घूमते हुए यह रेखा बंगाल में सुंदरवन तक एक बड़ा भाग घूम लेती है। पश्चिमी तट पर बहुत कम, लेकिन पूर्वी तट पर अब समुद्री तूफानों की संख्या और उनकी मारक क्षमता भी बढ़ती जा रही है। अभी कुछ समय पहले ओडिसा और आंध्र प्रदेश में आये चक्रवात की पूर्वसूचना समय रहते मिल जाने से बचाव की तैयारियां बहुत अच्छी हो गयी थीं और इस कारण बाकी नुकसान एक तरफ, कीमती जानें बच गयीं। लेकिन उसी के कुछ ही दिनों बाद वहां आयी बाढ़ में उससे भी ज्यादा नुकसान हो गया था।

हमारे पूर्वी तटों पर समुद्री तूफान आते ही हैं, पर अब नुकसान करने की उनकी क्षमता बढ़ती ही जा रही है। इसके पीछे एक बड़ा कारण है हमारे कुल तटीय प्रदेशों

में उन विशेष वनों का लगातार कटते जाना, जिनके कारण ऐसे तूफान तट पर टकराते समय विध्वंस की अपनी ताकत काफी कुछ खो देते थे।

समुद्र और धरती के मिलन बिन्दु पर, हजारों वर्षों से एक उत्सव की तरह खड़े ये वन बहुत ही विशिष्ट स्वभाव लिये होते हैं। दिन में दो बार ये खारे पानी में डूबते हैं, तो दो बार पीछे से आ रही नदी के मीठे पानी में। मैदान, पहाड़ों में लगे पेड़ों से, वनों से इनकी तुलना करना ठीक नहीं। वनस्पति का ऐसा दर्शन अन्य किसी स्थान पर संभव नहीं। यहां इन पेड़ों की, वनों की जड़ें भी ऊपर रहती हैं। अँधेरे में, मिट्टी के भीतर नहीं, प्रकाश में, मिट्टी के ऊपर। जड़ें, तना और फिर शाखाएं—तीनों का दर्शन एक साथ करा देने वाला यह वृक्ष, उसका पूरा वन इतना सुंदर होता है कि इस प्रजाति का एक नाम हमारे देश में सुंदर, सुंदरी ही रख दिया गया था। उसी से बना है सुंदरवन।

लेकिन आज दुर्भाग्य से हमारा पढ़ा-लिखा संसार, हमारे वैज्ञानिक, कोई 13-14 प्रदेशों में फैले इस वन के, इस प्रजाति के अपने नाम एकदम भूल गये हैं। जब भी इन वनों की चर्चा होती है, इन्हें इनके अंग्रेजी नाम 'मैंग्रोव' से ही जाना जाता है। हमारे ध्यान में भी यह बात नहीं आ पाती कि देश में, कम-से-कम इन प्रदेशों की भाषाओं में, बोलियों में तो इन वनों का नाम होगा, उसके गुणों की स्मृति होगी।

प्रसंगवश यहां यह भी जान लें कि मैंग्रोव शब्द भी अंग्रेजी का नहीं है, उस भाषा में यह पुर्तगाली से आया है।

तटीय प्रदेशों से प्रारंभ करें तो पश्चिम में ऊपर गुजराती, कच्छी में इसे चैरव, फिर मराठी, कोंकणी में खार पुटी, तिवर, कन्नड़ में कांडला काडु, तमिल में सधुप्पू निल्लम काड्ड, तेलगू में माडा आडवी, उड़िया में→

अभय साधक-बाबा आमटे

□ न्या. चंद्रशेखर धर्माधिकारी

इस 26 दिसंबर, 2013 से बाबा आमटे के जन्म शताब्दी वर्ष की शुरुआत हो रही है। 26 दिसंबर, 1914 को हिंणगाघाट मं एक कर्मठ परिवार में मुरलीधर उर्फ बाबा आमटे का जन्म हुआ। परिवार सुखी था। बाबा ने बी. ए., एल. एल. बी. की उपाधि प्राप्त की। वरोरा में उन्होंने वकालत शुरू की। बाद में 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन शुरू हुआ और वे उसमें कूद पड़े। जेल गये। एक युवा स्त्री को तकलीफ देने वाले ब्रिटिश सोलजरो से अकेले भिड़ पड़े। इसीलिए गांधीजी ने उन्हें 'अभय साधक' कहा था। 1947 में वे वरोरा नगर परिषद के उपाध्यक्ष बने। मेहतर संगठन के वे अध्यक्ष थे उनके जीवन से तादात्म्य हो इसलिए उन्होंने मेहतरो के साथ भंगी का काम करना शुरू किया। एक दिन बरसते पानी में वे सर पर

→झाऊवन कहा जाता है। बांगला में तो सुंदरवन सबने सुना ही है। एक नाम मकड़सिरा भी है। और हिन्दी प्रदेश तो समुद्र के तट से दूर ही हैं। पर ऐसा नहीं होता कि जो चीज जिस समाज में नहीं है, उस समाज की भाषा उसका नाम ही नहीं रखे। हिन्दी में इसे चमरंग वन कहते थे। पर अब यह शब्द नये शब्दकोशों से बाहर हो गया है।

पर्यावरण को ठीक से जानने वाले बताते हैं कि आंध्र और उड़िया में खासकर पारद्वीप वाले भाग में चमरंग वनों को विकास के नाम पर खूब ही उजाड़ा गया है। इसीलिए पारद्वीप ऐसे ही एक चक्रवात में बुरी तरह से नष्ट हुआ था। फिर यह भी कहा गया था कि उसके लिए एक मजबूत दीवार बना दी जायेगी। कुछ ठंडे देशों का अपवाद छोड़ दें, तो पूरी दुनिया में धरती और समुद्र के

मैले का टोकरा लिए जा रहे थे कि उनका ध्यान गटर में पड़े एक आदमी की ओर गया। वह महारोगी था। शरीर पर कई जख्म थे और उनमें कीड़े रेंग रहे थे। उनके लिए वह साक्षात्कार का क्षण सिद्ध हुआ। उनकी पूरी जिन्दगी ही बदल गयी। 1949 में बाबा ने 'स्कूल ऑफ ट्रॉपिकल डिजीजेस' संस्था में महारोग का इलाज कैसे करें, इसका अध्ययन पूरा किया। तत्संबंधी प्रतिबंधक दवाई तैयार करने के लिए अपने शरीर का उपयोग करने की तैयारी तक उन्होंने दर्शायी। 1950 में बाबा ने 'महारोगी सेवा समिति' इस महान संस्था की नींव चंद्रपुर जिले के वरोरा में रखी। उनका अलग जीवन एक 'खुली किताब' है। सभी लोग उस मर्दानगी से भरे जीवन के बारे में जानते हैं। जिस क्षण उन्होंने महारोगी के शरीर पर टाट का कपड़ा डाला, उस

मिलने की जगह पर प्रकृति ने सुरक्षा के खयाल से ही यह हरी सुंदर दीवार, लंबे-चौड़े सुंदरवन खड़े किये थे। आज हम अपने लालच में इन्हें काट कर इनके बदले पांच गज चौड़ी सीमेंट की दीवार खड़ी कर सुरक्षित रह जायेंगे, ऐसा सोचना कितनी बड़ी मूर्खता होगा—यह कड़वा सबक हमें समय न सिखाये तो ही ठीक होगा। चौथी कक्षाओं में हमें यह पढ़ा दिया जाता है कि पृथ्वी पर कोई सत्तर प्रतिशत भाग में समुद्र है, और धरती बस तीस प्रतिशत ही है। समुद्र के सामने हम नगण्य हैं। ये सुंदरवन, चमरंग वन हमारी गिनती बनी रहे—ऐसी सुरक्षा देते हैं।

दीवारें खड़ी करने से समुद्र पीछे हट जायेगा, तटबंद बना देने से बाढ़ रुक जायेगी, बाहर से अनाज मँगवाकर बांट देने से अकाल दूर हो जायेगा—बुरे विचारों की ऐसी बाढ़

क्षण उनके जीवन की अभय साधना शुरू हुई, ऐसा खुद बाबा ही कहते हैं। जब इंदू धुले नामक कर्मठ वेदशास्त्र-संपन्न परिवार में जन्मी लड़की ने बाबा से एक अलग ढंग का विवाह किया तभी 'अभय और साधना' का सच्चा मिलन हुआ। वे 'संयुक्ताक्षर' बन गये। जमीन संबंधी मिला हुआ पुश्तैनी अधिकार उन्होंने सहज त्याग दिया। अपॉस्टल पॉल ने कहा था, "I bear on my body the marks of the Lord Jesus"! इसी तरह की वेदनाएं और घाव लेकर जीने वाला आदमी है, बाबा आमटे। मार्टिन लूथर किंग का एक प्रसिद्ध वाक्य है, "I have learnt now that the master's burden is light, precisely when we take his yoke upon our shoulders."। बाबा इसी तरह का बोझ अपने कंधों पर लेकर जीते रहे। उनकी श्रद्धा थी से, अच्छे विचारों के ऐसे ही अकाल से हमारा यह जल संकट बढ़ा है।

श्री गोखले से भेंट होने के बाद राजेन्द्र बाबू कोई बावन बरस तक सार्वजनिक जीवन में रहे। उनका बचपन जिस गांव में बीता था, उस गांव में नदी नहीं थी। वे तैरना नहीं सीख पाये थे। लेकिन इस बावन बरस के एक लंबे दौर में उन्होंने अपने समाज को, देश को अनेक बार डूबने से बचाया था। अंतिम बारह बरस वे देश के सर्वोच्च पद पर रहे। जब वह निर्णायक भूमिका पूरी हुई तो सन् 1962 के मई महीने में वे एक दिन रेल में बैठे, और दिल्ली से पटना के लिए रवाना हो गये—उसी सदाकत आश्रम के एक छोटे से घर में रहने के लिए, जहां से उन्होंने सार्वजनिक जीवन की अपनी लंबी यात्रा प्रारंभ की थी। □

(डॉ. राजेन्द्रप्रसाद स्मारक व्याख्यान माला' में दिये व्याख्यान का मुख्यांश)

कि, 'All wood can be used for the cross'। इसी भावना से बाबा ने अपने सारे कार्यक्रम और आंदोलन चलाये। उन्होंने जीवन के हर अंग को स्पर्श किया। अनाथ लड़कों के लिए 'गोकुल' शुरू किया, तो वृद्धों के लिए 'उत्तरायण'। प्रज्ञाचक्षु (अंधे) लोगों के लिए 'आनंद अंध विद्यालय' की स्थापना की। अपंगों को मौका मिले इसलिए 'संधि निकेतन' स्थापित किया। श्रमिक विद्यापीठ की कल्पना रखी, आनंद निकेतन महाविद्यालय भी स्थापित किया। आनंद मूक विद्यालय के साथ सोमनाथ, हेमलकसा, अशोकवन आदि प्रकल्प खड़े किये। जीवन के टुकड़े कर बाबा नहीं जिये। उन्होंने समग्र जीवन का ही एक नक्शा निर्माण किया। 'भारत छोड़ो' के बाद जब औरों ने 'भारत छोड़ो' का उद्योग प्रारम्भ किया तब बाबा ने 'भारत जोड़ो' अभियान का प्रारम्भ किया। बाबा याने युवकों के प्रेरणास्रोत। सोमनाथ में हर साल 'श्रमसंस्कार छावनी' के नाम से युवकों का शिविर लगता है। 'शांति द्वारा शांति' इस अनोखे अभियान के तहत उन्होंने पंजाब के 52 देहातों का दौरा किया। बाबा को कई पुरस्कार मिले। पद्मश्री, पद्मविभूषण, राष्ट्रभूषण, जमनालाल बजाज पारितोषिक, पुणे और नागपुर विद्यापीठ की डी.लिट्, पंजाब राव कृषि विद्यापीठ की 'कृषि-रत्न', सामाजिक न्याय के लिए रामशास्त्री प्रभुणे पुरस्कार, डेमियन डेरैन पारितोषिक (अमेरिका), महाराष्ट्र शासन का राष्ट्रीय पुरस्कार, एन.डी. दिवाण पारितोषिक (नासेओह पारितोषिक समिति), मैगसेसे अवार्ड, महात्मा गांधी पुरस्कार इत्यादि। लेकिन बाबा का सच्चा पुरस्कार है उनके दोनों सुपुत्र और बहुएं—भारत तथा मंदा; तथा उनके पौत्र और पोती। विकास-प्रकाश ने आनंदवन, सोमनाथ, अशोकवन, भामरागड़ के प्रकल्प जिस उत्साह और जोश के साथ अपने कंधों पर उठाये, उन्हें विकसित किया, उसका कोई सानी नहीं। महारोगी और आदिवासी

क्षेत्र में काम करने वाले पिता की उसी काम में हाथ बँटाने वाली संतान गूलर का फूल मानी जाती है। लड़के डॉक्टर और बहुएं भी डॉक्टर! सभी को सही अर्थ में समाज-स्वास्थ्य की चिन्ता है। पुरस्कार तो उन्हें भी बहुत मिले। ख्याति भी बहुत मिली, लेकिन उनकी दृष्टि में आनंदवन का विस्तार होना समाज के लिए भूषणावह नहीं है। वह समाज में बढ़ते अनारोग्य का लक्षण है। वे सारे यह सपना देखते हैं कि यह आनंदवन मिट जाए और ऐसे आनंदवन की जरूरत न रहे, ऐसी समाज-व्यवस्था निर्माण हो। विज्ञान यह कहता है कि महारोग अन्य रोगों जैसा ही एक रोग है और वह ठीक हो सकता है। कई महारोगी अच्छे हो गये हैं। लेकिन जैसा कि गांधीजी कहते हैं, 'शरीर के महारोग से बदतर है मन का महारोग।' कुष्ठ रोगियों को समाज में फिर से सम्मानपूर्वक जीवन नसीब हो, इसलिए उनसे दोस्ती करने वाले लोग चाहिए थे। ऐसे कई दोस्त बाबा के काम से जुड़े। उनमें अण्णासाहब सहस्रबुद्धे, पु. ल. देशपांडे, सुप्रसिद्ध गायक वसंतराव देशपांडे, राम शेवाळकर, ये तो थे ही लेकिन इंदौर के सुप्रसिद्ध पत्रकार तथा साहित्यिक राहुलकी बारपुते, बाबा डिके, कुमार गंधर्व और उनके साथ हम जैसे कई दोस्त थे। हर साल महारोगियों के साथ, आनंदवन में हम सभी का मित्र-मिलन होता था, जिसके बारे में सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी एस. एम. जोशी जी ने कहा था कि, 'जब-जब जिन्दगी की बैटरी क्षीण हो जाए, तब वह 'चार्ज' करने के लिए आनंदवन के मित्र-मिलन में आना चाहिए।' देश में निर्माण हुई, सभी समस्याओं से बाबा सक्रियता से जुड़ते थे। नर्मदा सरोवर के आंदोलन के लिए बाबा ने आनंदवन छोड़ा और वे नर्मदा आंदोलन के लिए छोटा कसरावद, जिला खरगोन में 'निजबल' नामक एक झोपड़ा बनाकर रहने

लगे। उन्होंने मानो अपनी पूरी जिन्दगी दाँव पर लगा दी थी। मुझे जैसों को लगता था कि बाबा अपना समय और ताकत दोनों गँवा रहे हैं। मुझे बहुत ईमानदारीपूर्वक ऐसा लगता था कि औरों को कैसे और क्यों जियें, इसका पाठ पढ़ाने वाले बाबा अपनी खुद की जिन्दगी इस तरह दाँव पर क्यों लगा रहे हैं? पर बाबा थोड़े ही हमारी सुनने वाले थे। वे जमा-खर्च का हिसाब रखकर जीने वाले लोगों में से नहीं थे। बहुत जिद्दी लोगों में से थे। मन में सहज ही यह बात आ जाती है कि इसीलिए तो वे बाबा आमटे हैं—हम जैसों से कई मायने में अलग और अकेले। बाबा ने कई अनाथ बच्चों को और महारोगियों के लड़कों को अपने परिवार में शामिल कर लिया। उनके माँ-बाप के नाते साधनाताई का और अपना नाम दिया। जब तक वे हैं तब तक कोई अनाथ नहीं, यह उन्होंने अपने बर्ताव से सिद्ध कर दिया। उन्हें बाड़ पर बैठकर काम करना नहीं आता। वे Onlooker, दर्शक नहीं, पार्टिसिपेंट, सहयोगी बनकर जीना चाहते हैं।

9 अप्रैल, 1984 को बाबा ने गड़चिरोली जिले में 'जंगल बचाओ—मानव बचाओ' समिति की ओर से एक मोर्चा आयोजित किया था। वे इंद्रावती नदी पर बनने वाले इंचमपल्ली बांध और भोपालपट्टम बांध का तीव्र विरोध कर रहे थे। आजकल क्षीण होते जंगल और वन्य जीवन, आदिवासियों की दरिद्रता की तरह ही बाबा को बेचैन करते थे। जुलाई, 1988 में पर्यावरणवादियों की आनंदवन में एक परिषद हुई। बड़े बांधों का विरोध क्यों? इसका एक घोषणा-पत्र तैयार किया गया। बड़े बांधों के कारण देश की नैसर्गिक साधन सम्पत्ति नष्ट होने से लाखों लोग विस्थापित हो रहे हैं। जमीन और पानी के आधार पर विकसित 'सभ्यता' समाप्त हो रही है। दूसरी ओर बांधों के निर्माण के लिए हम अन्य देशों से भीख मांग रहे हैं। यह

जो सब कुछ हो रहा है वह शहरवासियों को, धनवानों को और प्रस्थापितों को अधिकाधिक अमीर बनाने के लिए हो रहा है। अकाल की छाया से देश को मुक्त करने के बजाय उसे अकाल की खाई में ढकेला जा रहा है। बाढ़ नियंत्रण के बजाय बाढ़ें लगातार आ रही हैं। सामान्य लोगों की जीवन-रेखा उन्नत होने के बजाय वे बेघर और विस्थापित होते जा रहे हैं, ऐसी स्थिति उस घोषणा-पत्र में व्यक्त की गयी थी। बाबा के शब्दों में 'शोषण से जो समृद्ध होता है, वह समाज को एक शाश्वत अंधेरा देता है।' विस्थापित आज तक कभी पुनरस्थापित नहीं हो सके, यह कटु सत्य है। इसलिए बाबा कहते हैं— "जहाजों के साथ अपने-आप को डुबा देने वाले कर्णधार जहां होते हैं वहीं पर डूबते देश को बचाने वाली नाविकों की पीढ़ियां जन्म लेती हैं।" ऐसे बाबा 'नाविक' थे।

आनंदवन की 'अनाम वृक्ष स्मरणशिला', 'बालतरु की पालकी' और 'वृक्ष का जुलूस' निसर्ग प्रेम का आविष्कार थे, वैसे पर्यावरण के संरक्षण का श्रीगणेश भी थे। मित्र-मिलन में डॉ. वसंतराव देशपांडे, डॉ. रूपा कुलकर्णी ने बालतरु के लिए गीत गाये। गोकुल की अनाथ 'धरती' को पालने में सुलाया। निसर्ग से जुड़ा हुआ और अनाथों से नाता जोड़ने वाला ऐसा समारोह मैंने अन्यत्र कहीं नहीं देखा। साक्षी रूप थे पु. ल. देशपांडे और मुझ जैसे पालकी के भक्त करताल बजाने वाले और कंठीधारी। किसी की भी नजर लगे ऐसा समारोह होता था वह। उसमें महारोगी भी शामिल होकर गाते थे। वहां गाने के लिए गला सुरीला होना जरूरी नहीं था, जरूरी था अच्छा दिल होना। इसलिए बाबा कहते थे— "आनंदवन के रोग से आनंदवन का आत्मविश्वास ज्यादा प्यारा है।" और "सच्चे कलाकार की कला गाय के पन्हाने जैसी होती है, जो अपने आप फूट पड़ती है।"

नवंबर, 1972 में सोमनाथ में विदर्भ साहित्य सम्मेलन का आयोजन हुआ। अध्यक्ष थे श्री विश्राम बेडेकर और उद्घाटक थे प्रो. नरहर कुरुंदकर। उस सम्मेलन में उपस्थित साहित्यकारों से बाबा ने एक सवाल किया, "अजंता और एलोरा में कई भग्न मूर्तियां हैं, चित्र हैं। सारी दुनिया के रसिक लोग उनमें होने वाला भग्न और नष्टप्राय हिस्सा अपनी कल्पना से भर देते हैं और उन कलाकृतियों का आनंद उठाते हैं। अगर पत्थरों की भग्न पाषाण मूर्तियां सौन्दर्य तथा आस्वाद का विषय बन सकती हैं तो फिर जिसके अवयव भग्न हुए हैं या गल गये हैं, वह महारोगी आस्वाद का विषय क्यों नहीं हो सकता? उसका जो अंग गल गया है उसे आप अपनी कल्पना से पूरा कर दीजिये। लेकिन मेरा दुःख यह है कि रसिक से रसिक आदमी के लिए भी यह सम्भव नहीं होता! ऐसा क्यों है?" बाबा के द्वारा उपस्थित यह प्रश्न उनके जीवन का यक्ष प्रश्न है। सभी दुःखों को दया और दान की भूमिका से देखने के बजाय सहजीवन और सहसंवेदना की भूमिका से देखकर उनकी अस्मिता जगाने वाला, मेरे जीवन में मिला हुआ पहला आदमी था— बाबा आमटे। उन्होंने मुझे इस प्रश्न की ओर देखने की एक नयी दृष्टि प्रदान की। महारोगी, अनाथ, अंध और दुःखी आदमी अपने इस देश में भी अस्मिता की खोज में हैं। वे प्रतिष्ठित रूप में जियें, खुद के पैरों पर खड़े रहें, किसी के सामने भीख के लिए हाथ न फैलायें, यह भूमिका बाबा ममभाव से साकार करते रहे। शरीर से अपंग परंतु मन से संपंग (मजबूत) महारोगियों की ओर से शरीर से सुदृढ़ और मन से अपंग मुझ जैसे कई लोगों को बाबा ने, इन्हीं महारोगियों की सहायता से एक नयी दुनिया कैसे निर्माण की जाती है और उनके सपने कैसे सत्य किये जा सकते हैं, इसका पाठ पढ़ाया। बाबा का एक प्रसिद्ध

वाक्य है, "जिन्हें वेदना का वरदान नहीं, वे शरीर से उन्मत्त हैं, और जो यातनाहीन हैं वे सपने नहीं देख सकते।" अंततः अंधकार देखने के लिए भी आंखों में प्रकाश चाहिए। हर बार नयी योजनाएं बनाना, समाज के सभी स्तरों के लोगों को, खासकर युवकों को, उसमें समाविष्ट कर लेने की प्रेरणा देना, उन योजनाओं को यथार्थ में उतारना और दुःखी तथा रोगी लोगों को नया जीवन प्रदान करना, ये काम बाबा निरंतर करते आये हैं। उनका नारा है, 'हाथ लगे निर्माण में, नहीं मांगने, मारने में।'

हाथ 'निर्माण' के लिए है, किसी पर 'उठाने' के लिए नहीं, यह नारा युवकों के लिए नया था। सेवा करने वालों के लिए भी उन्होंने कुछ सवाल रखे। समाज में दैन्य और दुःख किसने निर्माण किये? वह कौन-सी ताकत है जो लोगों के जीवन का हक छीन लेती है और अनाथ तथा दुःखी लोगों की संख्या बढ़ाती रही है? भूख से बेहाल लोगों के मुँह का कौर कौन छीन लेता है? रोजी-रोटी पहले छीन ले और फिर उसी रोटी का एक टुकड़ा दान के तौर पर फेंककर पुण्य कमाने वाला यह समाज आखिर कैसा समाज है? ये लोग बिना खैरात या बिना भीख मांगे जीने का हक प्राप्त कर सकें, उसका उपभोग कर सकें, ऐसा समाज वे निर्माण करना चाहते थे। उनका यह सपना था। बाबा खुद अच्छे कवि और साहित्यिक थे और सपनों को साकार करने की शक्ति उनमें थी। ऐसे बाबा का निधन 9 फरवरी, 2008 को हुआ। लेकिन हमारी मान्यता है कि 'मृत्यु' से ऐसे महान व्यक्ति का उनका कर्तृत्व समाप्त नहीं होता। इसीलिए हम महान व्यक्तियों की जयंती मनाते हैं। यह जन्म शताब्दी बाबा आमटे के कार्य को और उजागर करेगी, यह मेरी भावना है। अबू बेन आदम के शब्दों में उनके बारे में इतना ही कहूंगा कि— मे हिज ट्राइब इन्क्रीज। □

राजनीति का शुद्धीकरण जरूरी

□ विनोबा

आज दुनिया में जो चल रहा है उसे यदि भगवान स्वयं सहन कर लेता है और मैं सहन न करूँ (ऐसा तो चलेगा नहीं, यह मैं जानता हूँ) फिर भी मेरे लिए तो यह सब असह्य हो रहा है। आज समाज व राजनीति में जो व्यवहार चलता है और धार्मिक क्षेत्रों में जो दंभ दिख रहा है वह सब देखकर मुझे बहुत ही वेदना होती है। बापू के आने के बाद भी आज देश में जिस प्रकार की राजनीति चलती है, वैसी ही यदि चलने वाली हो तो फिर बापू ने आकर किया क्या, वह मेरी समझ में नहीं आ रहा है। उनके इस धरती पर आने से हम जैसों को कुछ लाभ मिला या नहीं मिला?

गांधीजी ने राजनीति को शुद्ध करने के लिए गोखलेजी से, जिन्होंने 'सर्वेन्ट ऑफ इंडिया सोसायटी' की स्थापना की थी, एक शब्द लिया था। उस संस्था के उद्देश्य में उन्होंने कहा था कि राजकाज को उदात्त बनाना और उसे अध्यात्म की योग्यता देनी होगी। उसमें उन्होंने 'राजनीति का शुद्धीकरण' जैसे स्पष्ट शब्दों का उच्चारण किया था। इन शब्दों को बापू ने उठा लिया था।

राजनीति का शुद्धीकरण करने के जितने प्रयास बापू ने किए थे, वैसे दूसरे किसी व्यक्ति ने किए हों, तो मैं नहीं जानता। राजनीति में कार्यरत होते हुए भी सत्य के ऊपर सतत दृष्टि रखकर काम करते रहने वालों में राजा जनक महाराज जैसों की बिलकुल चलने वाली नहीं है। किस राजनीति की बातें आप लोग करते रहते हैं? पाकिस्तान, फ्रांस, रूस, अमेरिका, जापान, जर्मनी आदि

देशों में कौन-सी राजनीति चलती है? वहां तो राजनीति के माने हैं शस्त्रों का खेल। यानी कि वास्तव में वह राजनीति तो शस्त्रनीति ही है। सबसे तेज, खतरनाक शस्त्र वाले राष्ट्र की राजनीति चलने वाली है।

यानी कि वास्तव में वह राजनीति तो शस्त्रनीति ही है। विज्ञान युग में भयानक शस्त्र आदि पैदा होंगे, तो इसका मतलब यही हुआ कि वे सब देश निःशस्त्र कैसे हो सकेंगे! समाज पूरे तौर पर निःशस्त्र किस रीति से बने, इसका विचार करना और उसके लिए जीवन अर्पण करना, इस विचार को सामने रखकर समाज को बनाना, उसी के आधार से समाज और देश खड़ा करने की कोशिश करना यानी लोकनीति की स्थापना। लोकनीति की स्थापना के बिना विज्ञान युग में राजनीति को शुद्ध करने का कोई दूसरा रास्ता नहीं मिल सकता।

आज सब ओर सत्ता का केन्द्रीकरण हो रहा है। यह सब अपने देश में वैलफेयर स्टेट, कल्याणकारी राज्य के नाम से जारी है। लोकतंत्र का केवल नाम होता है। लोकतंत्र का रूप नहीं होता। इस प्रकार लोकतंत्र का तो वह स्वयं ही संहार करती है। यह खेल सभी राष्ट्रों में चलता है। एक भी राष्ट्र ऐसा नहीं दिखता कि जहां लोकतंत्र उसके मूल अर्थ में विकसित हुआ हो। विज्ञान युग में ऐसा एक राष्ट्र हो भी नहीं सकता जो शस्त्रों के झमेले से बच सके। हम कौन-सा खर्च करें या न करें, अथवा किस रीति से करें, कम खर्च करें, अपनी योजना के स्वामी हम नहीं हैं। ऐसी स्थिति आज हर एक देश की

हो गई है। आज अमेरिका इतना समर्थ होते हुए भी अपनी योजना खुद नहीं बना पाता। अधिक कहें यह सब अपने हाथ में नहीं रहता; वह दूसरे देशों के हाथों में चला जाता है। अपनी योजना के स्वामी हम नहीं हैं। अमेरिका को अपनी योजना रूस की ओर देखकर ही बनानी पड़ती है। और रूस को भी समर्थ होने के बावजूद अपने देश की योजना अमेरिका की ओर देखकर ही बनानी पड़ती है। इसलिए सही अर्थ में, वास्तविक रूप से आज किसी भी देश को सच्ची आजादी मिली है, ऐसा हम नहीं मान सकते।

इसका और कोई इलाज नहीं है सिवा लोकनीति के। लेकिन सवाल यह पूछा जाता है कि जब तक लोकनीति की स्थापना ही नहीं हुई, तब तक इस बीच के समय में हम क्या करें? यह बीच के समय वाला सवाल हमेशा खड़ा हो जाता है। समझने की जरूरत है कि दुनिया के आरंभ से ही यह बीच वाला समय चलता आया है। गुजरा हुआ कल और आने वाला कल इनके बीच का जो दिन है वह बीच वाला समय होता है। यानी 'आज'। आज है वह बीच वाला समय। यानी बिचौलिया क्षण। वह तो हमेशा चलने वाला है। अब इस बीच वाले समय के नाम से ही हम यदि मूल वस्तु को खो देंगे, ऐसी वृत्ति हमारी होगी, तो जैसे सभी धर्म निकम्मे साबित हो चुके हैं, वैसे ही अहिंसा का यह विचार भी निकम्मा साबित होगा। □

(15 दिसंबर, 1958, बलोल, गुजरात)

प्रस्तुति: डेनियल माझगांवकर